ISSN No. 2582-9548

nbt.india
एकः सूते सकलम्

पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष - 10 • अंक - 6 • नवंबर - दिसंबर 2025 • मूल्य ₹40.00

भारतीय ज्ञान परंपरा विशेषांक

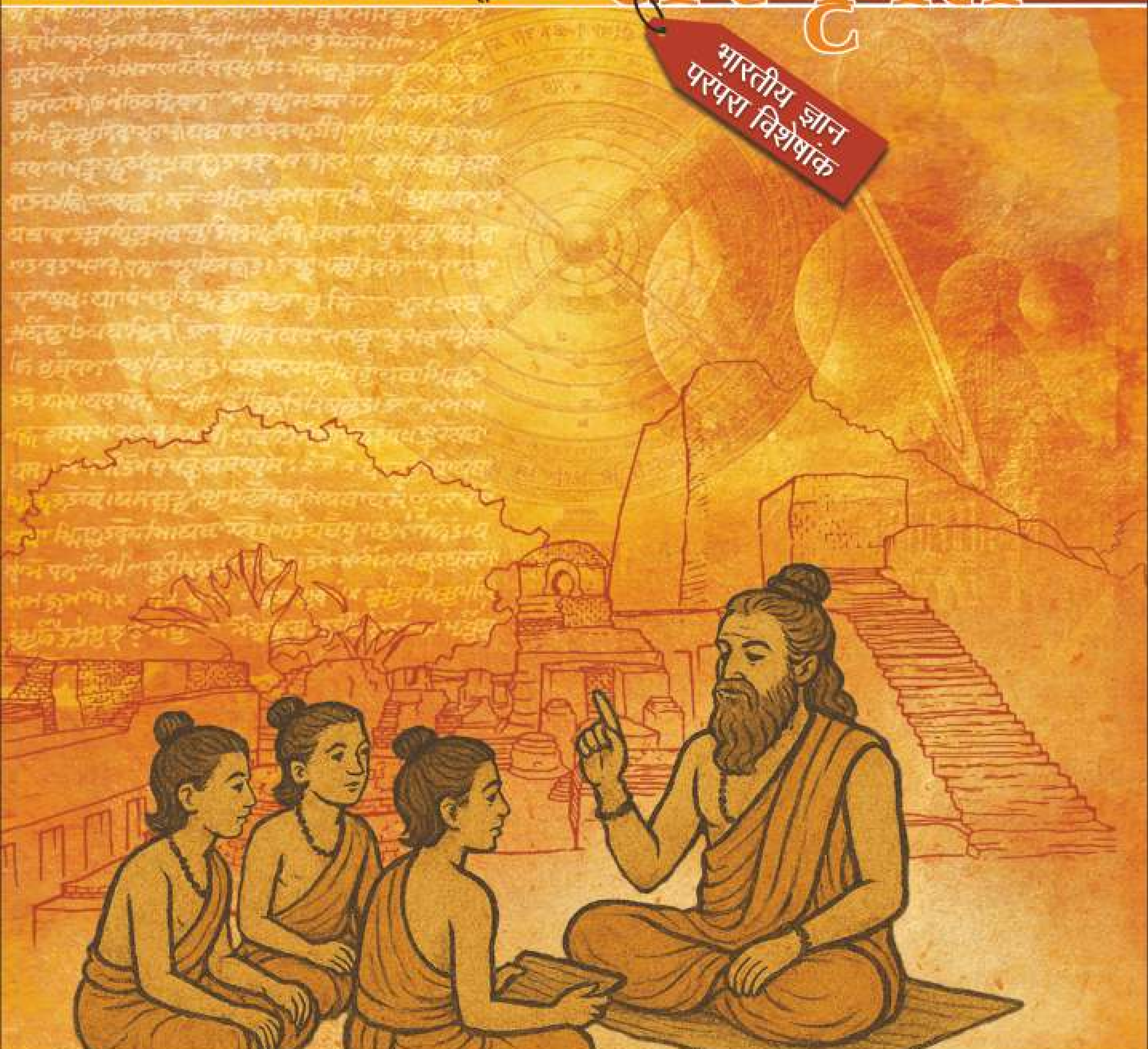

- भारतीय ज्ञान परंपरा और पवित्र वृक्ष : बरगद
- भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना चिंतन
- ग्रंथ को गुरु मानने से जुड़ी ज्ञान परंपरा
- हमारे प्राचीन ग्रंथों में भारतीय ज्ञान परंपरा

गोमती पुस्तक महोत्सव के चतुर्थ संस्करण का आयोजन

“ज्ञान की खोज जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए”, उल्लिखित विचार उत्तर प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ ने 20 सितंबर, 2025 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार और लखनऊ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित गोमती पुस्तक महोत्सव के चतुर्थ संस्करण का उद्घाटन करते हुए व्यक्त किया। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा, “बच्चों और युवाओं को स्मार्टफोन पर कम समय बिताना चाहिए और प्रतिदिन कम-से-कम एक घंटा रचनात्मक और ज्ञानवर्धक पुस्तकें पढ़ने के लिए समर्पित करना चाहिए।” महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास के उदाहरणों के माध्यम से भारत की साहित्यिक परंपरा पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने आगे कहा, “पढ़ना और प्रगति हमेशा से भारत की परंपरा रही है और माननीय प्रधानमंत्री का विचार ‘जब नागरिक पढ़ते हैं, तो देश आगे बढ़ता है’ इसी संदेश को दर्शाता है।” इसके अतिरिक्त, उन्होंने आँगनवाड़ी पुस्तकालय परियोजना की घोषणा की, जो राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस की एक संयुक्त पहल है। उन्होंने बच्चों से किताबें पढ़ने का आग्रह किया। उन्होंने बच्चों और युवाओं से अपील की, “एक अच्छी किताब एक सच्ची मार्गदर्शक बन सकती है, जो हमारे जीवन को आगे बढ़ा सकती है। मैं लखनऊ के सभी बच्चों से अपील करता हूँ कि वे गोमती पुस्तक महोत्सव में आएँ और यह सुनिश्चित करें कि उनमें से प्रत्येक इस महोत्सव से एक किताब घर ले जाए।”

उत्तर प्रदेश राज्य के माननीय मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ के साथ, उत्तर प्रदेश सरकार के माननीय उच्च शिक्षा मंत्री श्री योगेंद्र उपाध्याय, माननीय मुख्यमंत्री के सलाहकार श्री अवनीश के. अवस्थी, पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी, लखनऊ विश्वविद्यालय की कुलपति प्रो. मनुका खन्ना, एनबीटी, इंडिया के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे और एनबीटी, इंडिया के निदेशक श्री युवराज मलिक की विशिष्ट उपस्थिति में गोमती पुस्तक महोत्सव के इस नौ दिवसीय आयोजन का उद्घाटन समारोह संपन्न हुआ।

अपने संबोधन में, उत्तर प्रदेश सरकार के माननीय उच्च शिक्षा मंत्री, श्री योगेंद्र उपाध्याय ने नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (एनईपी) और समावेशी पठन-सामग्री के बारे में बात की और मुद्रित पुस्तकों के उपयोग की आवश्यकता पर भी बल दिया।

इस अवसर पर एनबीटी के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने भी अपने विचार रखे। पढ़ने की आदत के महत्व पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि साप्ताहिक सामूहिक पठन सत्र साझा सीखने की संस्कृति को बढ़ावा देने में मदद करेंगे। प्रसिद्ध लेखक, फिल्मकार और इतिहासकार डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी, जो 1991 के टेलीविजन धारावाहिक ‘चाणक्य’ के निर्देशक और अभिनेता के रूप में जाने जाते हैं, ने नालंदा का उदाहरण देते हुए वैदिक साहित्य और साहित्य के महत्व पर चर्चा की और कहा, “ज्ञान को आग की लपटें नष्ट नहीं कर सकतीं।”

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के निदेशक श्री युवराज मलिक ने समापन भाषण दिया और धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कहा, “नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया और राज्य सरकार के सहयोग से उत्तर प्रदेश ने देश के किसी भी अन्य राज्य की तुलना में अधिक पुस्तकें वितरित की हैं। उत्तर प्रदेश हर गाँव में पुस्तकालय के अभियान में अग्रणी है। ज्ञान हमें एकजुट करता है और हर व्यक्ति में एक पुस्तकप्रेमी, एक लेखक और एक कलाकार होता है। मैं आप सभी से गोमती बुक फेस्टिवल में आने और अपने अंदर छिपी इस प्रतिभा को जगाने का आग्रह करता हूँ।”

गोमती पुस्तक महोत्सव 20 से 28 सितंबर 2025 तक आयोजित किया गया, जिसमें नौ दिनों तक साहित्यिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक आदान-प्रदान का सिलसिला चलता रहा।

इस पुस्तक मेले में 200 से ज्यादा पुस्तक स्टॉलों पर एनबीटी, पेंगुइन इंडिया, रूपा पब्लिकेशंस, अमर चित्र कथा और कई अन्य प्रकाशकों सहित 2,000 से ज्यादा प्रकाशकों की कृतियाँ प्रदर्शित की गईं।

इसके अतिरिक्त, आगंतुकों ने भारत की राष्ट्रीय डिजिटल लाइब्रेरी, राष्ट्रीय ई-पुस्तकालय का भी आनंद लिया, जो विभिन्न शैलियों और भारतीय भाषाओं में 3,000 से ज्यादा ई-पुस्तकों तक पाठकों को निःशुल्क पहुँच प्रदान करती है।

प्रधान संपादक
प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे

संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
अल्पना भसीन, विजयलक्ष्मी पाण्डेय

विज्ञापन एवं प्रसार
जनसंपर्क अनुभाग

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

चित्रांकन
पार्थ सेनगुप्ता

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया,
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और सालासर इमेजिंग सिस्टम्स, ए-97, सेक्टर-58, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष-10; अंक-6; नवंबर-दिसंबर, 2025

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे* — 2

पवित्र वृक्ष — **भारतीय ज्ञान परंपरा और पवित्र वृक्ष : बरगद** —*डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा* — 3

लोक-स्त्री — **लोक-स्त्री का आख्यान पुराण**—*श्यामसुंदर दुबे* — 6

गुरुकुल — **हमारे गुरुकुल**—*डॉ. विजय बहादुर सिंह* — 9

चिंतन — **भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना चिंतन**—*डॉ. एस.सी. मिश्रा* — 12

शिक्षा — **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से लेकर एनसीईआरटी की नूतन पाठ्य-सामग्री तक भारतीय ज्ञान परंपरा की अद्भुत छटा** —*प्रो. दिनेश प्रसाद सकलानी* — 15

गुरु परंपरा — **ग्रंथ को गुरु मानने से जुड़ी ज्ञान परंपरा** —*डॉ. राजेश कुमार व्यास* — 19

प्राचीन ग्रंथ — **हमारे प्राचीन ग्रंथों में भारतीय ज्ञान परंपरा** —*गोपबन्धु मिश्रा* — 24

प्राचीन विज्ञान — **भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान**—*डॉ. मनोरमा मिश्रा* — 28

शब्द ज्ञान — **आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें** — 32

शिक्षा — **संस्कार में शिक्षा**—*स्वामी धर्मबन्धु* — 34

ज्ञान धारा — **ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परंपरा की धारा** —*ए.के. गांधी* — 36

ज्ञान की देवी — **भारतीय ज्ञान परंपरा में सरस्वती**—*डॉ. शैलेश कुमार मिश्र* — 39

कला — **भारतीय ज्ञान परंपरा में कला**—*उत्तमा दीक्षित* — 42

ज्ञान भारतम् — **ज्ञान भारतम् : धरोहर से डिजिटल युग तक, भारत की ज्ञान परंपरा का पुनर्जागरण**—*योगेश कुमार गोयल* — 47

श्रद्धांजलि — **समय जब ठहर जाए...**—*डॉ. रीतामणि वैश्य* — 50

पुस्तक समीक्षा — 53

साहित्यिक गतिविधियाँ — 62

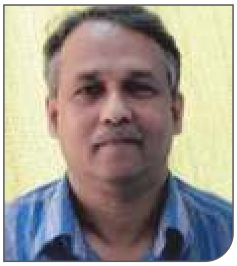

भारतीय ज्ञान परंपरा की ओर लौटने का समय

यदि यह कहा जाए कि समस्त संसार को ज्ञान, प्रज्ञा, चिंतन और दर्शन की अवधारणा प्राचीन भारत से प्राप्त हुई तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जब हम 'प्राच्य विद्या' शब्द का उपयोग करते हैं, तो इससे पूर्वीय देशों के इतिहास, धर्म, दर्शन, संस्कृति, भाषा एवं साहित्य आदि का बोध होता है, और कहना न होगा कि इन प्राचीन और पूर्वीय देशों में भारतवर्ष का नाम और स्थान सर्वोच्च एवं सर्वोपरि है। ज्ञान की रश्मि, प्रायः यह मान्यता है कि, सूर्य की भाँति, 'पूर्व' से ही निःसृत हुई है। जब संसार को ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या जैसे शब्दों का परिचय तक नहीं था, भारतभू पर श्रुति परंपरा में 'वेद' रचे जा चुके थे। इसके साथ ही, पुराण, उपनिषद् आदि की भी रचना हो चुकी थी।

भारतीय वाङ्मय में ज्ञान, चिंतन, दर्शन और मनीषा की समृद्ध विरासत है। यह अनायास नहीं है कि ज्ञान के आलोक और उजास के सांस्थानिक रूप स्वरूप तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभि आदि प्रभृत ज्ञान के प्राचीनतम केंद्र प्रथमतः इसी भारत भूमि पर निर्मित हुए, जहाँ विज्ञान, गणित, कला, दर्शन, ज्योतिष, नक्षत्र एवं खगोल विद्या, कृषि, धातु विज्ञान, नृत्य, संगीत और चित्रकला आदि विविध विषयों पर ज्ञान देने वाले सैकड़ों-हजारों आचार्य नियुक्त थे। यह कहना आत्मश्लाघा न होगा कि जब पश्चिम सभ्यता के पालने पर झूल रहा था, तब पूर्व, विशेषतः भारतवर्ष, में सभ्यता अपने चरम पर थी।

वैसे, इन सांस्थानिक रूपों से पूर्व, हमारे पास गुरुकुल और गुरु-शिष्य परंपरा की अति प्राचीन एवं समृद्ध विरासत भी देखी जाती है। भारतीय शिक्षा प्रणाली के प्राचीनतम विद्वानों, गुरुओं एवं ऋषियों में चरक, सुश्रुत, वराहमिहिर, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन, द्रोणाचार्य, परशुराम, मैत्रेयी, गार्गी तथा कालांतर में आदि शंकराचार्य इत्यादि हुए हैं। इसी तरह, अर्जुन, आरुणि आदि जैसे प्रसिद्ध शिष्य भी हुए हैं, जिनसे गुरु का गुरुत्व गुरुतर हुआ है।

वह भारतीय ज्ञान परंपरा ही है, जिसमें सर्वप्रथम विद्या के संबंध में, संस्कृत में, सूत्र रूप में एक नीति वचन कहा गया है—'सा विद्या या विमुक्तये', अर्थात् विद्या वह, जो बंधनों से मुक्त करे। कहने का तात्पर्य यह है कि विद्या वह, जो शरीर को आलस्य से मुक्त करे, मन को चंचलता से मुक्त करे तथा बुद्धि को मन की दासता से मुक्त करे। सर्वप्रथम इसी प्राच्य भूमि के विद्वानों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहा, अर्थात् हमारे यहाँ हजारों वर्ष पूर्व ही यह कह दिया गया था कि समस्त पृथ्वी एक परिवार के समान है। समस्त वसुधा को ही एक 'कुटुम्ब' मानने की उदात्त भावना के साथ ही भारतीय परंपरा में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' भी कहा गया, जिसमें सभी के सुखी, स्वस्थ एवं भले रहने जैसी उन्नत और श्रेष्ठ भावना का प्रस्फुटन दीखता है।

'अप्प दीपो भव' अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो और 'चरैवेति-चरैवेति' अर्थात् चलते रहो, चलते रहो जैसे प्रदीप्त और प्रेरणाप्रद वचन भी भारतीय ज्ञान परंपरा की ही देन हैं। विश्व सभ्यता को योग, आयुर्वेद, शून्य, संवत् समेत अनेक विद्याओं/कलाओं/विज्ञानों से परिचय के अतिरिक्त संस्कृत जैसी प्राचीनतम भाषा से परिचय भी हमारी इसी श्रेष्ठ ज्ञान परंपरा के कारण ही प्राप्त हुआ है।

जिस परंपरा में आत्मोन्नति से लेकर विश्वोन्नति तक की यात्रा 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' के प्रयोजन का निमित्त रहा हो, वैसी सर्वहितकारी भाव से आप्लावित सर्वोन्नति और सर्वोत्थान की हमारी परंपरा पर यदि हम गर्व करें तो यह सहज स्वाभाविक ही है।

जिस परंपरा में पशु, पक्षी, वृक्ष, नदी आदि प्राकृतिक उपादानों के साथ ही, पत्थर (मूर्ति) तक को पूजने की उत्कृष्ट भावना हो, उसी परंपरा में 'ग्रंथ' को भी यदि पूजनीय माना और समझा गया है तो किम् आश्चर्यम्! यह अनायास नहीं कि हम गुरु, ऋषि, विद्वानों के साथ-साथ उनके द्वारा रचित वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण एवं श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रंथों को भी पूज्य मानते हैं। गुरु और उनके द्वारा विरचित ग्रंथ हमारी शारीरिक-मानसिक ही नहीं, आध्यात्मिक-धार्मिक-नैतिक उत्थान के भी उपादानस्वरूप रहे हैं।

यह अनायास नहीं है कि 'ज्ञान भारतम्' पोर्टल के माध्यम से हमारी वर्तमान सरकार अपनी श्रेष्ठ ज्ञान परंपरा के पुनर्जागरण हेतु पूरी प्रतिबद्धता के साथ कार्यरत है। हमारे प्राचीन ज्ञान, भाषा और ज्ञान प्रणाली को आज सारा विश्व यदि मान और पहचान रहा है तो इसमें कोई अचरज नहीं। यूनेस्को ने 'वेद' को दुनिया का श्रेष्ठतम ग्रंथ घोषित किया है तो यह स्वाभाविक ही है। अभी हाल ही में भारत के 'श्रीमद्भगवद्गीता' तथा 'नाट्यशास्त्र' को 'मेमोरी ऑफ द वर्ल्ड रजिस्टर' में सम्मिलित किया जाना समस्त भारतीयों के लिए गर्व का विषय है।

प्रस्तुत अंक को भारतीय ज्ञान परंपरा विशेषांक के रूप में आप सुधी पाठकों के समक्ष लाते हुए हमें किंचित गर्व एवं खुशी का अनुभव हो रहा है। इस अंक पर आपके पाठकीय प्रतिभाव की प्रतीक्षा रहेगी।

(प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

भारतीय ज्ञान परंपरा और पवित्र वृक्ष
बरगद

जब कभी बरगद की चर्चा होती है, मुझे अपने कॉलेज और विश्वविद्यालय के दिनों की याद आ जाती है। मैं इलाहाबाद का रहने वाला हूँ। मेरी शिक्षा-दीक्षा इलाहाबाद में ही हुई। मैंने इंटरमीडिएट की परीक्षा इलाहाबाद के प्रसिद्ध ईविंग क्रिश्चियन कॉलेज से उत्तीर्ण की तथा बी.ए., एम.ए. तथा डी.फिल. की उपाधियाँ इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त कीं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय को उस समय 'ऑक्सफोर्ड ऑफ द ईस्ट' भी कहा जाता था। क्या आपको पता है कि दोनों ही शिक्षा संस्थानों की पहचान वहाँ के प्राचीन और विशाल वटवृक्ष से होती है? बरगद का विशालकाय पेड़ ईविंग क्रिश्चियन कॉलेज तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय परिसर की शोभा बढ़ाता है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के परिसर में लगा विशाल और प्राचीन बरगद का वृक्ष विश्वविद्यालय के ध्येय वाक्य में भी है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रतीक चिह्न में बरगद के पेड़ के नीचे लैटिन का एक ध्येय वाक्य भी अंकित रहता है—QUOT RAMI TOT ARBORES, जिसका हिंदी में अनुवाद है—'जितनी शाखाएँ उतने पेड़'। इस ध्येय वाक्य का अर्थ है कि जैसे बरगद की शाखाएँ कालांतर में वृक्ष का रूप धारण कर लेती हैं, उसी प्रकार इलाहाबाद विश्वविद्यालय का प्रत्येक छात्र कालांतर में एक संस्थान के समान बन जाता है। अब लैटिन के ध्येय वाक्य के नीचे संस्कृत में उसका अनुवाद 'यावत्यः शाखास्तावंतो वृक्षाः' भी जोड़ दिया गया है।

डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), डी.फिल. व एम.लिट् भाषाविज्ञान (दिल्ली), एफ.आर.ए.एस. (लंदन)

वे लब्धप्रतिष्ठ भाषावैज्ञानिक हैं, वे भारत सरकार की सर्वोच्च हिंदी सलाहकार समिति 'केंद्रीय हिंदी समिति' के पूर्व सदस्य; पूर्व उपाध्यक्ष, नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली; पूर्व उपाध्यक्ष, 'हिंदी अकादमी', दिल्ली सरकार; पूर्व राजनयिक (प्रथम सचिव) भारतीय उच्चायोग, सूवा, फीजी रहे हैं।

प्रकाशन : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से 'सरनामी हिंदी : हिंदी का विश्व फलक', 'जनकवि परसन : व्यक्ति और साहित्य' के साथ ही, पाठालोचन, विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण, कोश रचना, अनुवाद सहित 29 पुस्तकें अन्य प्रकाशनों से प्रकाशित

सम्मान : भारत के राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त महापंडित राहुल सांकृत्यायन सम्मान जैसे कई सम्मान से सम्मानित

संपर्क : मोबाइल– 9810441753

ई-मेल– vimleshkanti@gmail.com

मेरे समय में ईविंग क्रिश्चियन कॉलेज के परिसर में भी एक अति विशाल वटवृक्ष था, जिसकी प्रशाखाएँ धरती को छूती हुई स्वयं वृक्ष बन गई थीं और उस विशाल वृक्ष की शोभा भी निराली थी। इस बरगद के पीछे कितनी ही किंवदंतियाँ जुड़ी हुई थीं। मैंने सुना है कि अब कॉलेज परिसर में वह ऐतिहासिक वटवृक्ष नहीं है, जो एक समय पूरे शहर में कॉलेज की पहचान हुआ करता था।

प्रयागराज में गंगा और यमुना के संगम के निकट बने हुए अकबर के किले में भी एक पुराना अक्षयवट है, जिसकी पवित्र वृक्ष के रूप में आज भी पूजा होती है। इस वटवृक्ष के दर्शन सुरक्षा कारणों से विशिष्ट

अवसरों पर ही होते हैं। इसी वर्ष, जनवरी-फरवरी 2025 में, प्रयागराज में हुए महाकुंभ में लाखों लोगों ने इस पवित्र अक्षयवट के दर्शन किए। पौराणिक मान्यता है कि जब प्रलय होती है तब सब कुछ जलमग्न हो जाता है। उस समय भगवान कृष्ण अक्षयवट कहलाने वाले इस वृक्ष के एक पत्ते पर ईश्वर बालरूप में विद्यमान रहकर सृष्टि के अनादि रहस्य का अवलोकन करते हैं। बरगद अपनी इसी शाश्वत प्रकृति के कारण ही अक्षयवट भी कहा जाता है—अर्थात् ऐसा वट का वृक्ष, जो कभी नष्ट न होता हो।

दुनिया का सबसे बड़ा बरगद का पेड़, कहा जाता है कि कोलकाता के आचार्य जगदीश चंद्र बोस बॉटैनिकल गार्डन में है, जो 250 साल पुराना बताया जाता है। इस वटवृक्ष को दुनिया के सबसे विशालकाय बरगद के पेड़ के रूप में जाना जाता है। मान्यता है कि वर्ष 1787 में इस पेड़ को यहाँ स्थापित किया गया था। उस समय इसकी आयु लगभग 20 साल थी। पेड़ की इतनी जड़ें और बड़ी-बड़ी शाखाएँ हैं, जिसके कारण यह हर किसी को देखने में ऐसा लगता है, जैसे कोई जंगल में आ गया हो। आज इसे देखकर आप अनुमान भी नहीं लगा सकते कि यह एक पेड़ है। 14,500 वर्गमीटर में फैला यह पेड़ लगभग 24 मीटर ऊँचा है।

इसकी तीन हजार से अधिक जटाएँ हैं, जो अब जड़ों में बदल चुकी हैं। इस कारण से भी इसे दुनिया का सबसे विशाल वृक्ष कहते हैं। आपको जानकार संभवतः आश्चर्य हो कि इस वृक्ष पर पक्षियों की 80 से अधिक प्रजातियाँ निवास करती हैं।

आज इसे बॉटेनिकल सर्वे ऑफ इंडिया का प्रतीक चिह्न भी मानते हैं। पेड़ की देखभाल 13 लोगों की एक सुरक्षा टीम द्वारा की जाती है, जिसमें आपको वनस्पति शास्त्री से लेकर माली तक हर कोई मिल जाएगा। समय-समय पर इस पेड़ की जाँच भी की जाती है, यह देखने के लिए कि इसे किसी भी तरह की हानि तो नहीं पहुँच रही। वर्ष 2009 से इस क्षेत्र का नाम वनस्पति शास्त्री जगदीश चंद्र बोस के सम्मान में रखा गया।

भारतीय लोकजीवन, लोकसाहित्य और सांस्कृतिक चेतना में बरगद का पेड़ एक अत्यंत पवित्र और महत्वपूर्ण वृक्ष माना जाता है। बरगद के पेड़ को हिंदी में 'बड़' और संस्कृत में 'वटवृक्ष', 'न्यग्रोध', 'बहुपात', 'वृक्षनाथ', 'यमप्रियः', 'जटालः', 'महाछायः' आदि नाम से भी जाना जाता है। यह दीर्घायु, छायादार और संरक्षण देने वाला वृक्ष है, जो कई लोकविश्वासों, कथाओं और लोकगीतों में स्थान पाता है। बरगद को अपनी दीर्घायु के कारण अक्षयवट भी कहा जाता है। वनस्पति शास्त्र में बरगद को 'फाइकस बेंघालेंसिस' के नाम से जाना जाता है।

बरगद भारत का 'राष्ट्रीय वृक्ष' है। यह एक सदाबहार पेड़ है, जो अपने प्ररोहों के लिए विश्वविख्यात है। इसकी जड़ें जमीन में क्षैतिज रूप में दूर-दूर तक फैलकर पसर जाती हैं। इसके पत्तों से दूध भी निकलता है।

भारतीय धर्म ग्रंथों में बरगद त्रिमूर्ति का प्रतीक है। इसकी छाल में विष्णु, जड़ों में ब्रह्मा और शाखाओं में शिव विराजते हैं। अग्निपुराण के अनुसार बरगद उत्सर्जन को दर्शाता है। इसीलिए संतान के लिए इच्छित लोग इसकी पूजा करते हैं। यही कारण है कि बरगद को काटा नहीं जाता है। अकाल में इसके पत्ते जानवरों को खिलाए भी जाते हैं। बरगद बहुवर्षीय विशाल वृक्ष है। यह एक स्थलीय द्विबीजपत्री एवं सपुष्पक वृक्ष है। इसका तना सीधा एवं कठोर होता है। इसकी शाखाओं से जड़े निकलकर हवा में लटकती हैं तथा बढ़ते हुए धरती के भीतर घुस जाती हैं एवं स्तंभ बन जाती हैं। इन जड़ों को बरोह या प्राप जड़ कहते हैं। इसका फल छोटा गोलाकार एवं लाल रंग का होता है। इसका बीज बहुत छोटा होता है, किंतु इसका पेड़ बहुत विशाल होता है। इसकी पत्ती चौड़ी, एवं लगभग अंडाकार होती है। इसकी पत्ती, शाखाओं एवं कलिकाओं को तोड़ने से दूध जैसा रस निकलता है, जिसे लेटेक्स अम्ल कहा जाता है।

अक्षयवट के संदर्भ कालिदास के 'रघुवंश' तथा चीनी यात्री ह्वेन त्सांग के यात्रा विवरणों में मिलते हैं। भारतवर्ष में क्रमशः चार पौराणिक पवित्र वटवृक्ष हैं—गृद्धवट—सोरों 'शूकरक्षेत्र', अक्षयवट—प्रयाग, सिद्धवट—उज्जैन और वंशीवट—वृंदावन।

वामनपुराण में वनस्पतियों की व्युत्पत्ति को लेकर एक कथा भी आती है। आश्विन मास में विष्णु की नाभि से जब कमल प्रकट हुआ, तब अन्य देवों से भी विभिन्न वृक्ष उत्पन्न हुए। उसी समय यक्षों के राजा 'मणिभद्र' से वट का वृक्ष उत्पन्न हुआ।

यक्षाणामधिस्यापि मणिभद्रस्य नारद।
वटवृक्षः समभव तस्मिस्तस्य रतिः सदा।।

यक्ष से निकट संबंध के कारण ही वटवृक्ष को 'यक्षवास', 'यक्षतरु', 'यक्षवारूक' आदि नामों से भी जाना जाता है। पुराणों में ऐसी अनेक प्रतीकात्मक कथाएँ, प्रकृति, वनस्पति व देवताओं को लेकर मिलती हैं। जिस प्रकार अश्वत्थ अर्थात् पीपल को विष्णु का प्रतीक कहा गया, उसी प्रकार इस जटाधारी वटवृक्ष को साक्षात् जटाधारी पाशुपति शंकर का रूप मान लिया गया है।

हरिवंश पुराण में एक विशाल वृक्ष का वर्णन आता है, जिसका नाम 'भंडीरवट' था और उसकी भव्यता से मुग्ध हो स्वयं भगवान ने उसकी छाया में विश्राम किया।

न्यग्रोधर्वताग्रामं भाण्डीरंनाम नामतः।
दृष्ट्वा तत्र मतिं चक्रे निवासाय ततः प्रभुः।।

'सुभद्रवट' नाम से एक और वटवृक्ष का भी वर्णन मिलता है, जिसकी डाली गरुड़ ने तोड़ दी थी। रामायण के अक्षयवट की कथा तो लोक प्रचलित है ही, परंतु वाल्मीकि रामायण में इसे 'यामन्यग्रोध' कहा गया है। यमुना के तट पर वह वट अत्यंत विशाल था। उसकी छाया इतनी ठंडी थी कि उसे 'यामन्योग्राध' नाम दिया गया। 'याम' शब्द कदाचित् वृक्ष की विशाल छाया के नीचे के घने अथाह अंधकार की ओर संकेत करता है और गहरे रंग की पत्रावलि की ओर। रामायण परवर्ती साहित्य में इसका अक्षयवट के नाम से उल्लेख मिलता है। राम, लक्ष्मण और सीता अपने वन प्रवास के समय जब यमुना पार कर दूसरे तट पर उतरते हैं, तो तट पर स्थित इस विशाल वटवृक्ष को सीता प्रणाम करती हैं।

हिंदुओं के अलावा जैन और बौद्ध भी इसे पवित्र मानते हैं। कहा जाता है कि बुद्ध ने कैलाश पर्वत के निकट प्रयाग के अक्षयवट का एक बीज बोया था। जैनियों का मानना है कि उनके तीर्थंकर ऋषभदेव ने अक्षयवट के नीचे तपस्या की थी। प्रयाग में इस स्थान को ऋषभदेव तपस्थली (या तपोवन) के नाम से जाना जाता है।

वाराणसी और गया में भी ऐसे वटवृक्ष हैं, जिन्हें अक्षयवट मानकर पूजा जाता है। कुरुक्षेत्र के निकट ज्योतिसर नामक स्थान पर भी एक वटवृक्ष है, जिसके बारे में ऐसा माना जाता है कि यह भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गए गीता के उपदेश का साक्षी है। सोरों 'शूकरक्षेत्र' में वराह पौराणिक पवित्र गृद्धवट है, जहाँ पृथ्वी-वराह संवाद हुआ था।

कई एशियाई और प्रशांत कथाओं और धर्मों में बरगद के पेड़ों की प्रमुखता दिखती है। बरगद के कई संदर्भ बौद्ध धर्म के पालि ग्रंथों में भी पाए जाते हैं।

बरगद का वृक्ष एक गुणकारी वृक्ष है और संभवतः इसी कारण उसके गुणों को परखकर जन समाज ने वटवृक्ष को पवित्र वृक्ष की संज्ञा दी और कृतज्ञतावश उसके पूजन का विधान किया। वैज्ञानिकों ने बरगद के अनेक चिकित्सकीय लाभ बताए हैं। नेपाल में लोग विभिन्न प्रकार की बीमारियों और स्वास्थ्य समस्याओं के इलाज के लिए बरगद की जड़ों, पत्तियों और छाल का इस्तेमाल करते हैं। सामान्य दस्त के इलाज के लिए नए पत्तों को पानी में भिगोकर एक एस्ट्रिंजेंट बना लेते हैं, जो जीआई ट्रैक्ट में सुधार करता है और सूजन की स्थिति में लाभदायक होता है। इसकी जड़ों को चबाने से मसूड़ों से खून आना, दाँतों की सड़न और मसूड़ों की बीमारी की रोकथाम में सहायता मिलती है। इसके बीज मुँह की दुर्गंध को दूर करने में सहायक हैं और प्राकृतिक दंत मंजन की तरह काम करते हैं। वटवृक्ष की जड़ मुँह की अधिकतर स्वास्थ्य समस्याओं के निराकरण में सहायता करती हैं। बरगद के पेड़ की छाल इम्यूनिटी बढ़ाने का एक विश्वसनीय स्रोत है। पेड़ के रस में सूजन-रोधी प्रभाव होता है और इसका प्रयोग गठिया रोग की चिकित्सा के लिए किया जाता है। यह सूजन को कम भी करता है। ऐसा कहा जाता है कि बरगद के पेड़ के फल से निकला अर्क मस्तिष्क में सेरोटोनिन के स्तर को बढ़ाता है और अवसाद को दूर करता है। बरगद के पेड़ की छाल अच्छे कोलेस्ट्रॉल की उच्च मात्रा को बनाए रखते हुए प्रभावी रूप से खराब कोलेस्ट्रॉल को कम करती है। वैद्य मधुमेह के इलाज के लिए बरगद की जड़ का काढ़ा पीने की सलाह देते हैं।

भारतीय लोकमानस जड़ और चेतन, दोनों के प्रति कृतज्ञता का भाव विविध रूपों में व्यक्त करता है। कहीं तो सावित्री और सत्यवान की कथा गढ़कर, तो कहीं विशिष्ट तिथि पर उसकी पूजा का आनुष्ठानिक विधान कर तो कहीं प्रतीक कथा के माध्यम से। भगवान विष्णु प्रलय काल में वटपत्रशायी हैं तो कहीं सावित्री-सत्यवान कथा से वटवृक्ष जुड़ा हुआ है, तो कहीं नियत तिथि पर गाँव और शहर की सभी स्त्रियाँ मिलकर वटवृक्ष का पूजन करती हैं। गाँव का वटवृक्ष गाँव के सभी लोगों के लिए आश्रयस्थल भी है। बरगद के नीचे गाँव की चौपाल लगती है, तपती हुई गर्मी में सभी को सघन वृक्ष की छाया मिलती है। गाँव की स्त्रियाँ उस पर झूला डालकर अपना मनोरंजन करती हैं। पेड़ की छाल, पत्ती से निकला हुआ दूध, बीज और फल सभी गाँव के लिए सामान्य रोग उपचार में काम आते हैं। वटवृक्ष इस प्रकार व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है।

भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपरा में बरगद अत्यंत महत्वपूर्ण वृक्ष है। यह जीवन, स्थायित्व, छाया और परंपरा का प्रतीक रहा है। प्राचीन हिंदी कविता में बरगद का उल्लेख अनेक रूपों में मिलता है—विशेषकर भक्ति, ग्राम्य जीवन और लोक अनुभव के संदर्भ में।

बरगद नारी शक्ति और पतिव्रता का प्रतीक है। देखिए, एक लोकगीत में रचनाकार किस प्रकार सावित्री द्वारा अपने पति सत्यवान के प्राणों को बचाने की बात कहती है। गीत के बोल हैं—

बरगद के नीचे बइठी सावित्री,
पति के प्राण बाचलि।
यमराज के रोके राह,
भक्ति से जीवन बचलि।

सावित्री ने बरगद के नीचे बैठकर तपस्या की और अपने पति के प्राणों की रक्षा की। यमराज की राह रोककर भक्ति से पति के जीवन को बचा लिया।

भारतीय जनमानस में वट सावित्री व्रत कथा इतनी गहरी पैठी हुई है कि हर वर्ष ज्येष्ठ माह की अमावस्या को विवाहित महिलाएँ अपने पति की लंबी उम्र और सुख-समृद्धि के लिए वट सावित्री व्रत रखती हैं। इस दिन सुहागिनें बरगद के पेड़ की पूजा करके उसके चारों ओर कच्चा सूत लपेटती हैं और सात बार परिक्रमा करती हैं। यह परंपरा सिर्फ एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि आस्था, प्रेम और अटूट रिश्ते का प्रतीक मानी जाती है। व्रत के साथ बड़े आस्था भाव से सावित्री-सत्यवान की कथा सुनाई जाती है।

मान्यता है कि वटवृक्ष के नीचे ही यमराज ने सावित्री को पति सत्यवान के प्राण वापस लौटाए थे। इसलिए इस दिन वटवृक्ष की पूजा और कथा का पाठ करने से महिलाओं को व्रत का पूरा फल मिलता है।

भोजपुरी अंचल में बरगद से जुड़े अनेक लोकगीत और कथाएँ हैं। वट सावित्री व्रत के अवसर पर गाया जाता है और पति की दीर्घायु के लिए नारी के प्रेम, त्याग और शक्ति को दर्शाता है।

बरगद के नीचे बइठल बानी,
सती सावित्री बोलावेली।
यमराज से विनती करेली,
पिया के प्राण बचावेली।

अवध क्षेत्र में देखिए, बरगद के पेड़ के नीचे विवाह की लालसा का उल्लेख कितने मार्मिक रूप में दिखता है—

बरगदवा के नीचे होई बियाह, धरती माता लेबें साख।
सजनवा बनी बरगद देव, सुहागिन बनलि पाख।

यह गीत प्रतीकात्मक रूप में है, जिसमें वर को 'बरगद' और वधू को 'प्रकृति की सखी' बताया गया है।

भारतीय जनजीवन में बरगद केवल एक वृक्ष मात्र नहीं है। वह पिता की तरह आश्रय और छाया देता है, पति के समान विविध आपदाओं में आत्मविश्वास जगाता है और सुरक्षा देता है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में पवित्र वृक्षों में बरगद का पीपल, बेल, आम और नीम के समान ही महत्वपूर्ण स्थान है और उसके पूजन का विधान है। भारतीय संस्कृति में कृतज्ञता का भाव केवल मानव के प्रति ही नहीं, उन सभी के प्रति दिखता है, जो मानव के जीवन में उसके सहायक हैं और उसके दैनिक जीवन से जुड़े हुए हैं—चाहे वे शुद्ध जलदायी नदियाँ हों, आश्रयदाता और रोगोपचारी वृक्ष हों या अन्नदायी धरती हो।

लोक-स्त्री का आख्यान पुराण

हमारी यह दुनिया बहुत कुछ सुंदर, सुशोभन और आत्मीय इसलिए भी है कि इसे रचने में स्त्री-मन का भी हाथ है। स्त्री के रचे चित्र, उसके रचे और गाये गीत, उसके आकल्पित व्रत-त्योहार, उत्सव-समारोह और उसके द्वारा विन्यस्त सभ्यता के सौंदर्य प्रतिमान, सभी हमारे जीवन के अनुरंजन और क्षेम-कुशलता के आधार हैं। स्त्री ने जो व्रत-उपवासों का एक सिलसिला जीवन के धार्मिक परिसर में स्थापित किया, उसमें उसके विश्वास और उसकी आस्थाओं का दिग्दर्शन एक उत्सवी वातावरण की निर्मिति भी करता है। गीत-संगीत, पूजन-प्रार्थना, साज-सज्जा, देव-आराधना के साथ आत्म-संयम जैसे

श्यामसुंदर दुबे

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.

संप्रति : पूर्व प्राचार्य, स्नातकोत्तर महाविद्यालय एवं पूर्व निदेशक, मुक्तिबोध सृजन पीठ, डॉ. हरीसिंह गौर, वि.वि. सागर (म.प्र.)।

प्रकाशन : लोक संस्कृति पर केंद्रित 12 पुस्तकों सहित अब तक लगभग 50 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'साहित्य भूषण', केंद्रीय हिंदी संस्थान का 'सुब्रह्मण्य भारती सम्मान', म.प्र. साहित्य अकादमी के 'बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'', 'आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी' एवं 'ईसुरी पुरस्कार' आदि।

संपर्क : मोबाइल– 9977421629

ईमेल– shantanudubey478@gmail.com

आयोजन-प्रयोजनों के बीच कथा-वार्ता का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है।

प्रायः प्रत्येक व्रत-उपवास और उत्सव किसी-न-किसी कथा से संबंधित है। यह कथा इस तरह के आयोजनों का केंद्रीय तत्व होती है। ये एक तरह की लोक कथाएँ हैं। इन्हें स्त्रियों ने रचा है, और वे ही इनका कथन भी करती हैं। इस कथा-कथन के बिना ऐसा कोई आयोजन संपन्न नहीं होता है, जो स्त्रियों के पूजन-पाठ का हिस्सा न हो।

प्राक्कालीन कथा-संरचना में स्त्री की भागीदारी कितनी-कैसी थी, इस पर कोई निश्चित टिप्पणी नहीं की जा सकती है, किंतु यह अवश्य कहा जा सकता है कि जो उस समय की मिथकीय कथा-सृष्टि है, उसमें न केवल स्त्री की उपस्थिति है, बल्कि उसके विनियोजन में भी स्त्री की दृष्टि का प्रयोग है। इस तरह की कथा-संरचना में प्राप्त उपादानों में भले ही मनुष्येतर लोक के क्रिया-कलाप हों, लेकिन उनकी संबंध धारणाएँ घरेलू किस्म की हैं। अनुभूति का यह संसार स्त्री के रचनात्मक हिस्से का है। स्त्री की वैदिक काल और वेदोत्तर काल में इस तरह के कथा-रचना प्रसंगों में सीमित भूमिका थी। पुराणकाल तक पुरुषों का इस प्रसंग में योगदान सर्वोपरि हो गया। बौद्धिक चिंतन में शास्त्र का सूत्रधार पुरुष बनने लगा। स्त्री की आवाजाही इस क्षेत्र में सीमित हुई थी, तो उसने अपनी सीमाओं में ही अपनी कथाएँ रचना प्रारंभ कर दिया। यह लोक बोलियों में पुराणों के समानांतर लोक पुराण जैसी अवधारणा थी। ये लोक कथाएँ थीं, जो धार्मिक विश्वासों को अभिव्यक्त करने वाली थीं। इन्हें स्त्रियाँ ही रचती रहीं और वे ही कहती हैं, सुनती हैं। इन्हें व्रत-उपवास के किस्सों के रूप में मान्यता प्राप्त है।

व्रत-उपवासों और उत्सव उद्यापनों का सिलसिला पूरे वर्षभर चलता है। कुछ उपवास व्रत चौमासे में संपन्न होते हैं। कुछ

पर्व प्रसंगी और कुछ उत्सवधर्मी रहते हैं। ये स्त्री प्रधान हैं। इनमें स्त्रियाँ ही पूजन-व्यवस्था और इनसे संबंधित कर्मकांड पूर्ण करती हैं। स्त्री समुदाय अपनी-अपनी पूजन-सामग्री लेकर उपस्थित रहता है। कोई एक महिला, जो विषय-विशेषज्ञ जैसी होती है विधि-विधान पूर्वक पूजन कराती है, फिर संबंधित अवसरोचित कथा सुनाती है। यह कथा उसे अपनी पूर्व पीढ़ी की किसी स्त्री से प्राप्त हुई होती है। यह मौखिक होती है और स्मृति आधारित भी। स्त्रियाँ इसे भक्तिभाव से श्रवण करती हैं। कथा-कथन करने वाली स्त्री लोक शैली में ही सहज संबोधी स्तर पर इसे प्रस्तुत करती है। उसका यह भी प्रयास होता है कि उसके द्वारा कही गई कथा, श्रोता समुदाय में से कोई स्त्री ले ले। अर्थात् वह कथा किसी योग्य अधिकारिणी को सौंपकर निश्चिंत हो जाए। अपने जीवित रहते वह कथा का हस्तांतरण कर देती है। इस रूप में कथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है।

जो कथा संबंधित धार्मिक आयोजन की पृष्ठभूमि पर रची जाती है, उसमें गुजरते समय के साथ कोई बदलाव नहीं होता है। वह अपनी समस्त संरचना में अपरिवर्तनीय रहती है। कथा में एक बीज-बिंदु निर्धारित किया गया होता है। यह बीज-बिंदु व्रत-उपवास के देवी-देवता की किसी विशेष संवेदना को व्यक्त करने वाला रहता है या उनसे जुड़ी किसी चमत्कारिक घटना का प्रदर्शक होता है। इसी अभिप्राय को केंद्र में रखकर कथा का ताना-बाना बुना जाता है। सामाजिक स्तर पर संपन्न होने वाले आयोजनों में सामाजिक संबंधों वाले लौकिक कथानक की प्रमुखता रहती है। धार्मिक प्रयोजन वाले कथानक में मनुष्य, मनुष्येतर प्राणियों और देव समुदाय से संबंधित अलौकिक संतानें भी मानवीय चरित्रों की तरह अभिव्यक्त होती हैं। लोक-मन को स्वप्नपरक फेंटैसी इन कथानकों को रहस्यमय चमत्कारिक रूप देती हैं। ये कथाएँ अपराध के प्रायश्चित के बाद जीवन में आई किसी भी प्रकार की न्यूनता को समाप्त करने वाली स्थितियों की परिणति में पूर्ण विराम लेती हैं। इन न्यूनताओं में धन-द्रव्य की कमी, स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से परेशानी और जीवन उन्नति में आने वाली बाधाओं के रूप में लिया जा सकता है। अधिकांश स्त्रियाँ, व्रत-उपवास, इन समस्याओं के निवारण हेतु एक संकल्प के रूप में अनुष्ठानित करती हैं।

यदि पुराण-कथाओं के समानांतर इन कथाओं की विषय-वस्तु और इनकी संरचनाओं का विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होने लगता है कि इन लोक कथाओं के कुछ सूत्र वहाँ भी मिल जाते हैं, और पुराणों की कथाएँ भी इनके समान अपनी अभिव्यक्ति में विकसित होती हैं। एक तरह से यह लोक और शास्त्र का आदान-प्रदान ही है। गार्हस्थिक और अन्य सांसारिक समस्याओं का समाधान दोनों का लक्ष्य है। दोनों स्वस्तिकामना के साथ अपना समापन करते हैं।

इन कथाओं में जो लोक विद्यमान है वह स्त्री-संवेदना को प्रत्यक्ष करने वाला है। लोक के जीवन-मूल्यों की रक्षा और लोक संस्कृति के वैविध्य में भारतीयता की पहचान के अंतःसूत्रों को ये लोक कथाएँ युगों-युगों से अपने भीतर समाये हुए हैं। अनेक विदेशी आक्रमणों उनकी सांस्कृतिक स्तर पर विस्तारवादी नीतियों का, लोक-स्त्री के इन विश्वासों ने डटकर सामना किया है। ये कथाएँ पारिवारिक संबंधों की ऊर्जा को आत्मीय ऊष्मा में तब्दील करती हैं। अतीत के प्रेरणादायी प्रसंगों को प्रस्तुत कर वर्तमान में जीवनगत विश्वासों की शक्ति का समाहार इनके कथानक में छिपा रहता है, जो तमाम अंतर्द्वंद्वों और अनपेक्षित दबाबों का शमन करता है और आत्मिक शक्तियों का विकास करता है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के संवेदनापरक सृजनात्मक अनुभवों की कथा-दृष्टि है, जो जीवन के कल्याणकारी पक्ष की दिग्दर्शिका है। इन कथाओं में स्त्री-जीवन के स्वप्न भी हैं और स्त्री-जीवन का यथार्थ भी है।

इन कथाओं का विकास चूँकि मिथक-श्रेणी के कथानकों के सूत्रों के सहारे भी हुआ है, इसलिए इनमें अलौकिक चरित्र और घटनाओं का भी समावेश है, किंतु ये मानवीय जीवन के दुख-सुख से प्रेरित हैं। इसलिए इनमें सामाजिक चेतना का क्षेत्र अधिक है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन में ये संकट-मोचक प्रसंगों की अनुस्मृतियाँ अधिक हैं। इनमें राजा-रानी, पंडित-पुरोहित, देवता-राक्षस, गरीब-अमीर, खेती-किसानी और नौकरी-चाकरी से संबंधित चरित्र सक्रिय रहते हैं। संबंधों के आधार पर पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पिता आदि के आपसी बर्ताव और इनमें आये विघटन तथा इनके पारस्परिक हेल-मेल के प्रसंगों के अवतरण की सामाजिक और पारिवारिक समरसता की पर कथा भी इन कथाओं का महत्वपूर्ण अंग हैं।

किसी देवापराध के कारण कोई राजा या रानी अपना राजसी वैभव खो बैठते हैं। वे दर-दर भटकने लगते हैं। उन्हें खाने तक के लाले पड़ जाते हैं। इसी बीच किसी तपस्वी से वे मिलते हैं। तपस्वी उन्हें कोई विशेष व्रत करने को कहते हैं। वे उस तपस्वी की बात मान लेते हैं। अभावों के बीच भी वे व्रत का पालन करते हैं। देवता उन पर प्रसन्न हो जाते हैं, और उनका खोया राज-पाट उन्हें वापस मिल जाता

है। यह जीवन के प्रति आस्था का जागरण है। जब राजा पर भी विपत्ति आ सकती है, तब सामान्य जनों के जीवन में तो विपत्तियों का आना सहज संभाव्य है। कठिन समय में संघर्ष की शक्ति और भविष्य के प्रति आशान्वित करने वाली चेतना को जागृत करने में इन कथाओं का बड़ा योगदान है। जो व्रत या उपवास किया जा रहा है, उसके प्रति दृढ़निष्ठा और उसके सम्यक् निर्वाह हेतु की जाने वाली साधना की फल-प्राप्ति का ये कथाएँ एक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इस तरह से इनका संबंध व्यक्ति की आत्म-शक्तियों के जागरण से भी है। बुंदेलखंड में प्रचलित 'दशारानी की कथा' इसी तरह की है, जो तत्संबंधी व्रत को अंगीभूत है। मूलतः ये कथाएँ व्रत या उपवास के माहात्म्य के रूप में प्रचलित हैं।

"एक व्रत पर्व है 'हरछठ'! यह 'हलब्रष्ठि' का अपभ्रंश शब्द है। यद्यपि यह बलराम के जन्म का पौराणिक प्रसंग है, किंतु लोक में स्त्रियाँ इसे शिशुओं की कुशल-क्षेम के निमित्त मनाती हैं। इस दिन वे उपवास रखती हैं।"

इन कथाओं में असंभाव्य की संभाव्यता का भी प्रकरण रहता है। वैज्ञानिक दृष्टि से यद्यपि ऐसे प्रकरणों की सत्यता संदिग्ध ही रहती है, किंतु मनुष्य के प्राक मस्तिष्क की स्वप्नदर्शिता अभी हमारे मस्तिष्क का एक हिस्सा है, जो चमत्कारिक घटनाओं को विश्वसनीय-सा बनाकर प्रस्तुत करने में संतुष्ट होता है। इसे किसी विशेष दैवीय शक्ति की कृपा के परिणामस्वरूप घटित माना जाता है—ये लोक-विश्वासों का ही एक प्रभाग है। नववधू जब ससुराल में पहली बार आती है तब स्त्रियों का एक विशेष सामाजिक-धार्मिक उत्सव होता है। इसे 'गौरैयाँ' कहा जाता है। इस कार्यक्रम में आस-पास की स्त्रियाँ शामिल होती हैं। ये सौभाग्यवती स्त्रियों का लोकधर्मी आयोजन है। इसमें बहू को सजाया जाता है। वह देवी का पूजन करती है। स्त्रियों को भोज्य-सामग्री और सौभाग्य की प्रतीक सामग्री यथा— चूड़ी-कंगन, सिंदूर आदि प्रदान करती है। इसमें सम्मिलित स्त्रियाँ तब तक उपवास रखती हैं जब तक इस आयोजन की कथा का कथन न हो जाए। यह कथा स्त्री-विमर्श प्रधान कथा है। घर-गृहस्थी में स्त्री की महत्ता को रेखांकित करने वाली इस कथा में स्त्री आदि दैवीय शक्तियों को प्राप्त कर लेती है और असंभव को भी संभव बना देती है। पौराणिक कथा सावित्री-सत्यवान से यह कथा प्रेरित दिखती है।

एक व्रत पर्व है 'हरछठ'! यह 'हलब्रष्ठि' का अपभ्रंश शब्द है। यद्यपि यह बलराम के जन्म का पौराणिक प्रसंग है, किंतु लोक में स्त्रियाँ इसे शिशुओं की कुशल-क्षेम के निमित्त मनाती हैं। इस दिन वे उपवास रखती हैं। एक बार ही वे अनजोती गई जमीन पर उगे घास के दानों का आहार लेती हैं। गाय का दूध और उससे बने पदार्थ त्याज्य होते हैं। 'हरछठ' माता पलास, झरवेरी और काँस की डालियों और पौध से निर्मित एक गुच्छ होती हैं, जिन्हें गीली मिट्टी के आधार पर रोपा जाता है। 'हरछठ' माता का पूजन होता है, फिर उनसे संबंधित कथा सुनाई जाती है। कथा में हल की नोक से खेत में खेलते एक शिशु का पेट फट जाता है। वह घायल हो जाता है। माँ 'हरछठ' माता को अपनी इस विपत्ति से न केवल अवगत कराती है, बल्कि वह यह प्रार्थना भी माता हरछठ से करती है कि वे उसके शिशु को जीवन दान दें, तो वह उनका व्रत रखेगी। हरछठ माता प्रसन्न होती हैं। काँस की लंबी पत्ती और झरवेरी के काँटों की सहायता से वे शिशु का पेट सिल देती हैं, और पलाश के पत्ते ऊपर से बाँध देती हैं। शिशु स्वस्थ हो जाता है। इस लोक कथा की फलश्रुति यही है कि हरछठ माता का व्रत रखने से वे शिशुओं की रक्षा करती हैं। यह कथा कृषि-संस्कृति के परिवेश से जन्मी है—उसमें प्रकृति-पूजन और प्रकृति-संरक्षण के साथ गौवत्सों को उस दिन माँ का संपूर्ण दूध पिलाने का अवसर सुलभ कराना भी है। भारतीय संस्कृति अपनी कथा-वार्ताओं में मनुष्येतर सृष्टि की सुरक्षा का भी ध्यान रखती है, यही उसका लोकाराधन है।

महालक्ष्मी पूजन के अवसर पर मिट्टी के हाथी की पूजा की जाती है। इसमें दो कथाएँ सुनाई जाती हैं। एक कथा महाभारत की कहानी की छाया में रची गई है। कौरवों ने अपनी माता के पूजन के लिए एक विशाल गजराज का प्रबंध किया, किंतु राज्य रहित पांडवों की माँ कुंती के पास हाथी ही नहीं था। कुंती ने अपने पुत्रों से इस विषय में चर्चा की और अपना दुःख बताया, तब अर्जुन ने इंद्र से कहकर ऐरावत हाथी को स्वर्ग से बुला लिया। माँ कुंती ने प्रसन्नतापूर्वक पूजन किया। दूसरी कथा कवितानुमा है और बहुत छोटी है। यह कथा किसी बड़ी ऐतिहासिक कथा का अत्यंत संक्षिप्तीकृत रूप है, जो लोक कविता के माध्यम से अपनी कूटपद्धति में प्रचलित है। कथा का प्रारूप इस तरह है— "पुरट्टन गाँव, आमोती दामोती रानी। ब्राह्मण बरुआ कहें कहानी। सुनो हो! महालक्ष्मी रानी। हमसे कहते तुमसे सुनते सोलह बोल की एक कहानी"। स्त्रियाँ कार्तिक स्नान करने का व्रत लेती हैं। वे गोपी भाव से श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं। इस माह के अंतिम दिनों में वे आपस में कथा-शृंखला सुनने-सुनाने का क्रम चलाती हैं। इस तरह स्त्री के मनोभावों, मनोरथों और मनःसंकल्पों की अभिव्यक्ति ये लोक कथाएँ करती हैं। इनमें परिवेश भेद से कभी-कभी विचलन भी हो जाता है।

चूँकि ये कथाएँ धार्मिक परिवेश पर आश्रित हैं, अतः इनमें धर्म-दृष्टि प्रधान नैतिकता, सांस्कृतिक प्रवाहमयी स्मृति संरक्षा और मानवीय आचरण की उदात्त चेतना का समाहार है। भारतीय ज्ञान परंपरा की यह आख्यानपरकता स्त्री-जीवन के उन पक्षों को उजागर करती है, जिनमें वे 'सर्वे भद्राणि पश्यंतु'—सबका मंगल हो, सबके अच्छे दिन लौटें, वाला भाव लोकहित में पालती हैं।

हमारे गुरुकुल

प्राचीन काल का भारत दुनिया के एक बड़े हिस्से में प्रायः गौतम बुद्ध और उनके द्वारा दी गई शिक्षाओं के लिए जाना जाता है। पर यह कहना फिर भी अतिशयोक्ति की श्रेणी का नहीं माना जाएगा कि इससे भी पहले वह अपने तक्षशिला जैसे गुरुकुलों के लिए जाना जाता था। तक्षशिला एक नगर और गांधार प्रदेश की राजधानी भी था। चूँकि इसी नगर

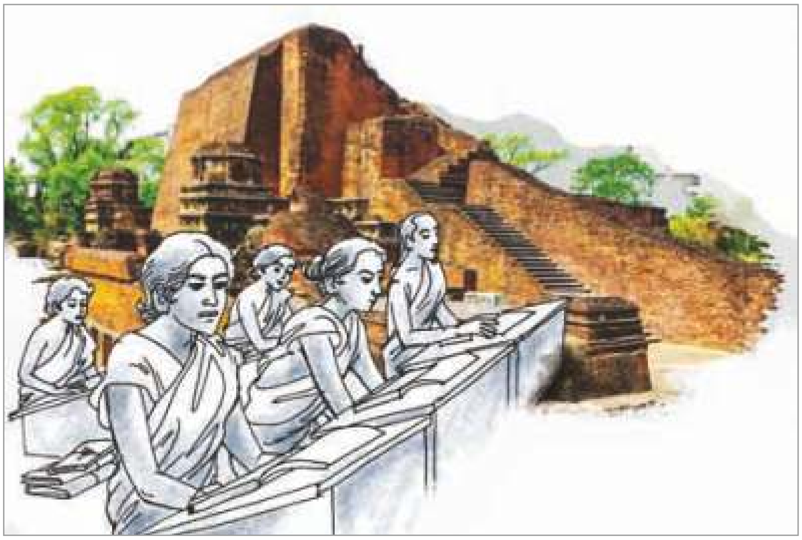

में यह गुरुकुल था, इसलिए कोलकाता, मुंबई, दिल्ली जैसे अपने शहरों के नाम से ख्यात आधुनिक विश्वविद्यालयों जैसा नाम तक्षशिला गुरुकुल को भी मिला हुआ था।

इसकी प्राचीनता को लेकर जो बातें कही और सुनी जाती हैं, उनका संबंध ईसा पूर्व की शताब्दियों से है। चीनी यात्री फाह्यान चौथी शताब्दी में यहाँ आता है, किंतु कौटिल्य के नाम से ख्यात आचार्य चाणक्य यहाँ चौथी शती ई.पू. में अर्थशास्त्र के अध्यापक रहे थे। इस तरह, सिकंदर के आक्रमण के समय भी यह गुरुकुल अत्यंत प्रसिद्ध था। इसकी महत्ता का बोध इसी बात से किया जा सकता है कि देश के सुदूर क्षेत्रों से चलकर छात्र यहाँ आते थे। जातकों के अनुसार, कोसल के राजकुमार प्रसेनजित तथा बिंबिसार के अवैध पुत्र जीवक की शिक्षा भी तक्षशिला में संपन्न हुई थी। 'चंद्रगुप्त' नाटक में जयशंकर प्रसाद ने तक्षशिला की विद्यादान-पद्धति की श्रेष्ठता को लेकर जो दृश्य और संवाद रचे हैं, वे यहाँ भी पठनीय हैं—

मगध में नंद की राजसभा

प्रतिहारी का प्रवेश

प्रतिहारी : जय हो देव! मगध से शिक्षा के लिए गये हुए तक्षशिला के स्नातक आए हैं।

नंद : लिवा लाओ (दौवारिक का प्रस्थान, चंद्रगुप्त के साथ कई स्नातकों का प्रवेश)

स्नातक : राजाधिराज की जय हो!

नंद : स्वागत! अमात्य वररुचि अभी नहीं आए, देखो तो?

वररुचि : जय हो देव! मैं स्वयं आ रहा था।

नंद : तक्षशिला से लौटे हुए स्नातकों की परीक्षा लीजिए।

वररुचि : राजाधिराज, जिस गुरुकुल में मैं स्वयं परीक्षा देकर स्नातक हुआ हूँ, उसके प्रमाण की पुनः परीक्षा, अपने गुरुजनों के प्रति अपमान करना है।

—अंक प्रथम, पंचम दृश्य

ये वही वररुचि हैं, जिन्होंने पाणिनी के 'अष्टाध्यायी' पर वार्तिक की रचना की। इससे यह सूचना भी मिलती है कि तक्षशिला का गुरुकुल अपने आचार्यों भर के चलते

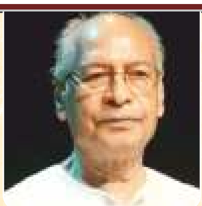

डॉ. विजय बहादुर सिंह

जन्म : 16 फरवरी, 1940; फैजाबाद (अब अम्बेडकर नगर), उत्तर प्रदेश

प्रकाशन : 'मौसम की चिट्ठी', 'पृथ्वी का प्रेमगीत', 'पतझर की बाँसुरी', 'भीम बैठका तथा अन्य कविताएँ' (लंबी कविताओं का संग्रह); 'आप के लाए हुए दिन' (गीतात्मक एवं गजल); 'नागार्जुन का रचना-संसार कविता और संवेदना', 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र' (आलोचना); 'आजादी के बाद के लोग', 'आओ खोजें एक गुरु' और 'स्कूल दूसरा घर' आदि समाज एवं शिक्षा पर भी पुस्तकें प्रकाशित। कविता, आलोचना, संस्मरण, जीवनी लेखन के अतिरिक्त, कवि भवानीप्रसाद मिश्र, दुष्यन्त कुमार और आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी रचनावली का संपादन करने के साथ-साथ भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका 'वागर्थ' के संपादन कार्य से भी संबद्ध रहे।

सम्मान : राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर के अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से सम्मानित।

संप्रति : भोपाल के उच्च शिक्षा-उत्कृष्टता संस्थान में हिंदी के विभागाध्यक्ष पद सहित, अनेक उच्च शिक्षा संस्थानों में शैक्षिक सेवा से सेवानिवृत्त होकर, स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : मोबाइल— 9425030392

नहीं, छात्रों के कारण भी लोकख्यात था। पर तक्षशिला अकेला गुरुकुल नहीं था। यह देश नालंदा और विक्रमशिला जैसे अपने गुरुकुलों के नाते भी जाना जाता था। निश्चय ही ये तक्षशिला जितने प्राचीन नहीं थे, किंतु अपने जीवन-काल में वैश्विक पहचानों के स्वामी थे।

जानकारों के अनुसार, चीनी यात्री फाहृयान के समय तक विद्याकेंद्र के रूप में किसी विश्वविद्यालय के होने के कोई संकेत नहीं हैं, किंतु ह्वेनत्साँग के समय, जो फाहृयान के लगभग तीन शताब्दियों के अनंतर यहाँ आया था (लगभग सातवीं शताब्दी ईसा में) नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना शुक्रादित्य नामक नरेश द्वारा की गई थी। इतिहासकारों के अनुसार, 'शुक्र' शब्द इंद्र का पर्याय है तथा मुद्रा-साक्ष्य के अनुसार, 'महेंद्रादित्य' कुमार गुप्त प्रथम की प्रिय उपाधि थी, अतएव शुक्रादित्य और कुमार गुप्त प्रथम की एकता संभाव्य है। कहा जाता है कि शुक्रादित्य के उपरांत बुध गुप्त ने इस विश्वविद्यालय को कलेवर-वृद्धि में सहयोग प्रदान किया। तत्पश्चात्, तथागत गुप्त, बालादित्य वज्र तथा हर्ष आदि ने नालंदा में भवन बनवाए तथा विश्वविद्यालय को आर्थिक सहायता प्रदान की। सम्राट हर्षवर्द्धन ने वहाँ पर पीतल का एक विहार तथा उसके चतुर्दिक एक दीवान बनवाया। एक संघाराम का भी निर्माण करवाया, जिसमें चालीस भिक्षुओं के भोजन की भी व्यवस्था थी।

इतिहासकार यह भी बताते हैं कि नालंदा के छात्रों को निःशुल्क भोजन, वस्त्र तथा शिक्षा दी जाती थी। हर्ष के बाद के शासकों ने भी इस विश्वविद्यालय को अपना दायित्व और गौरव समझकर आर्थिक सहयोग किया। ह्वेनत्साँग ने इस समय के बहुविश्रुत आचार्यों का नामोल्लेख किया है, जिनमें से सर्वप्रमुख आचार्य शीलभद्र सर्वोपरि हैं, जो उस समय कुलपति थे। ह्वेनत्साँग ने धर्मपाल नाम के एक और आचार्य का स्मरण किया है, जो आचार्य शीलभद्र के पहले नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य रह चुके थे।

ह्वेनत्साँग चीन देश के निवासी थे, पर विशिष्ट शिक्षा उन्होंने नालंदा विश्वविद्यालय से ग्रहण की। इसके मूल में वहाँ के आचार्यों

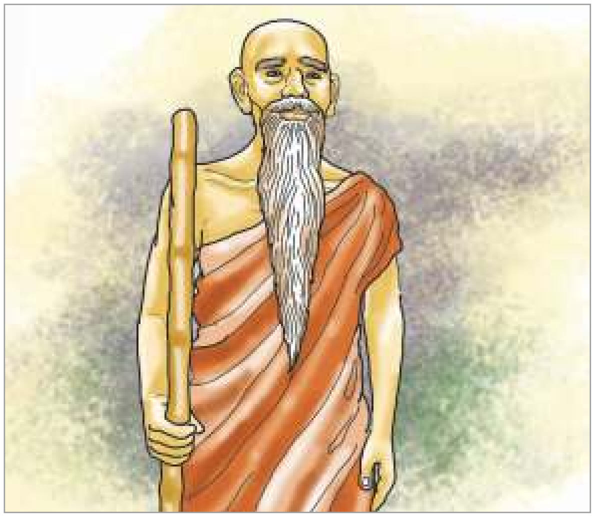

की वह प्रतिष्ठा और ख्याति थी, जो अनेक ज्ञान-विज्ञान, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में चिंतक और लेखक के रूप में याद किए जाते थे। नालंदा पर शोध करने वाले विद्वानों के अनुसार, विश्वविद्यालय के नाम नवागंतुकों और अभ्यागतों की जानकारी के लिए विश्वविद्यालय के प्रमुख द्वार पर ही उत्कीर्ण कर दिये गए थे। इस विश्वविद्यालय की सर्वतोभद्र प्रतिष्ठा और ख्याति का एक कारण यह भी था कि यह विद्या-केंद्र बौद्ध धर्म और दर्शन के केंद्र के रूप में जाना जाता था। ह्वेनत्साँग ने एक और चकित कर डालने वाली बात लिखी है, वह यह कि विश्वविद्यालय में प्रवेश पा लेना विशिष्ट योग्यता की माँग करता था। प्रवेश द्वारों पर ही ऐसे सक्षम पंडितों (द्वार-पंडित) की उपस्थिति अनिवार्यतः बनी रहती थी, जो प्रवेश की कामना लिये विद्यार्थियों की पात्रता की जाँच-परख किया करते थे, तथापि योग्य छात्रों की यहाँ कोई कमी भी नहीं थी।

उन दिनों के अन्य विवरणों से पता चलता है कि ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन के समस्त दरवाजे किसी राजनीतिक अथवा सांप्रदायिक दबाव और आग्रह से सर्वथा मुक्त थे। यह तो स्पष्ट है कि उन दिनों का भारतीय मानस मुख्यतः वैदिक-अवैदिक, नास्तिक कहकर पहचानने वाले बौद्धों-जैनों के परस्पर संवाद और सम्मिलन की भंगिमाओं में थे, तब भी विद्या-केंद्रों की स्वतंत्रता और स्वाधीनता निर्द्वंद्व और निरपवाद थी। आचार्यों एवं उनके जिज्ञासु छात्रों के बीच अन्य किसी भी तीसरे की उपस्थिति न तो स्वीकार्य थी, न ही उसकी कल्पना की जा सकती थी।

भारत की शिक्षा-दृष्टि को लेकर पहले ही सोच और मान लिया गया था कि शिक्षा का मूल उस सामाजिक शील में है, जो राम और युधिष्ठिर जैसे रामायण और महाभारत के इन चरित्रों में परिलक्षित होता है। कहने को रावण, कंस, जरासंध और दुर्योधन भी प्रचुर ज्ञान-विज्ञान के अधिकारी थे, पर उनके व्यक्तित्व में वह सामाजिक शील नहीं था, जिसकी कामना भारतीय शिक्षा-पद्धति करती आई है। इसे और अधिक समझना हो तो आचार्यों के उन दीक्षांत वाक्यों में

महसूस किया जा सकता है, जहाँ वे कहते हैं—सत्यं वद (सच बोलना), धर्मम् चर (धर्म का आचरण करना), इसी तरह, प्रिय बोलना। एक और महत्वपूर्ण जो कथन हमारी परंपरा करती आई है कि गुरुओं के उन्हीं-उन्हीं आचारों का अनुसरण करना, जो तुम्हारे आचरण के योग्य हो। यानी कि जो मनुष्य होने की तुम्हारी पहचान को रेखांकित करे। इसे समझने में प्रेमचंद की दो कहानियाँ, 'परीक्षा' और 'मंच' हमारी काफी मदद करती हैं।

इन गुरुकुलों में निस्संदेह ऐसे भी आचार्य रहे हैं, जिन्हें आज के मुहावरे में 'अनुदार' और 'लकीर के फकीर' कहा जा सकता है, जो अपने विद्यार्थियों की जिज्ञासाओं के प्रति प्रायः अनुकूलता प्रदर्शित नहीं करते। उपनिषद् के सत्यकाम की कथा अतिविख्यात है। अनेक गुरुकुलों ने तो उसे इसलिए प्रवेश की अनुमति नहीं दी कि उसे यही नहीं ज्ञात था कि उसका पिता कौन है। किंतु उसी काल में एक अन्य आचार्य भी थे, हारिद्रुमत गौतम। उन्होंने उदारतापूर्वक अनुमति देते हुए उसे उपसंपदा दे दी।

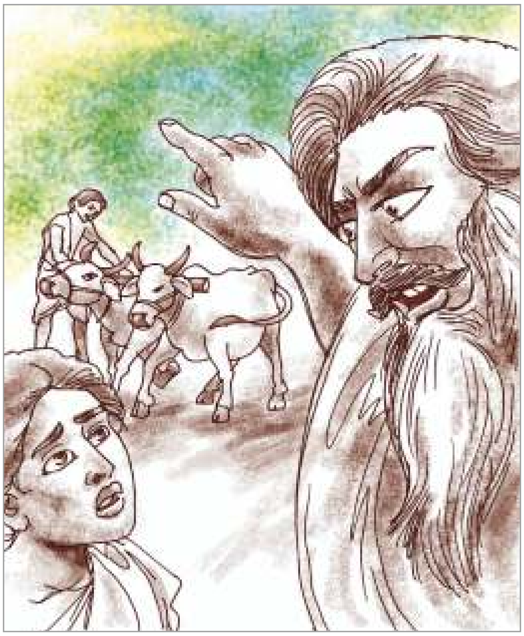

कनिष्क काल को केंद्रित कर लिखे गए उपन्यास 'और फिर' में कथाकार राधावल्लभ त्रिपाठी उन दिनों के गुरुकुलों के आचार्यों की दो किस्में रेखांकित करते हुए कथानायक विशाख के मुँह से कहलवाते हैं, "महाभारत में अयोद धौम्य की कथा आती है। सौम्यदेव गुरु जी अयोद धौम्य के जैसे थे। अत्यंत कठोर, कटु भाषी और कठोर हृदय, अंतेवासियों को काम में लगाए रहते। गुरुकुल में रहना विशाख के लिए क्लेश बनता गया। आश्रम में वह गायें चराता था, भिक्षा में जो कुछ मिलता वह सब गुरु को दे देता। भोजन रुचिकर न मिलता, जो मिलता वह थोड़ा मिलता। गुरुपत्नी को प्रसन्न रखने का सब अंतेवासी प्रयास करते, पर वे भी सबको लताड़ती रहतीं।" उसी गुरुकुल में एक और भी थे—आचार्य कौंडिन्य, जो अत्यंत स्नेहिल थे, उदार तो थे ही। जो गुरुकुल के अंतेवासियों की सच्ची जिज्ञासाओं का महत्व न केवल समझते थे, बल्कि उनका समुचित समाधान निकालने का प्रयास भी किया करते थे। विशाख जैसे अंतेवासी जीवनभर हारिद्रुमत गौतम या आचार्य कौंडिन्य जैसे आकाशधर्मा आचार्यों की कामना किया करते। कारण यह कि वे आचार्यों की प्रतिध्वनि मात्र नहीं, उनकी परंपराओं को नये मोड़ तक पहुँचाने के सपनों से भरे रहते। तभी तो उनके छात्रत्व की सार्थकता थी। वासुदेवशरण अग्रवाल 'छात्र' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—यह कल्पना बड़ी मधुर है—छत्रशीलमस्य—यानी वह, जो आचार्य के जीवन पर छत्र के समान छाया रहे। गुरु की सीमाओं को विस्तार करे। परंपरा में प्लेटो के शिष्य अरस्तू का उदाहरण इस संदर्भ में अति ख्यात है।

परंपरा में इन आचार्यों की तीन श्रेणियों का उल्लेख भी आता है। एक श्रेणी प्रवक्ताओं की आती थी, जिनका दायित्व शाखाग्रंथ, ब्राह्मण और श्रौत सूत्र आदि का प्रवचन करना था। वेद और वेदांगों का अर्थ-सहित अध्यापन करना था। ये 'आख्याता' भी कहे जाते थे। दूसरी श्रेणी उन श्रोत्रियों की थी, जो छंद या वेद की शाखाओं को कंठस्थ करने का काम किया करते थे। इनका संबंध मुख्यतः वेद के पारायण से था।

तीसरी श्रेणी में वे अध्यापक आते थे, जिनका दायित्व लौकिक या वैज्ञानिक साहित्य का अध्यापन था।

पाणिनि और पतंजलि, दोनों ने अध्ययन करने वाली स्त्रियों का उल्लेख भी किया है, जिन्हें 'अध्येत्री' या ब्राह्मणी कहा जाता था। तथापि, सभी के संदर्भ में ब्रह्मचर्य आधारभूत अनिवार्य शर्त थी।

जहाँ तक तक्षशिला और नालंदा जैसे लोकविख्यात विद्या-केंद्रों का प्रश्न है, ये उच्चशिक्षा के केंद्र थे और अपने विशेषज्ञ आचार्यों के लिए अतिख्यात थे। विद्याएँ भी यहाँ ढेर सारी पढ़ाई जाती थीं। तक्षशिला में वेद, व्याकरण, दर्शन, नक्षत्र विद्या, ज्योतिष, कृषि, इंद्रजाल, संगीत, नृत्य एवं चित्रकला जैसी विद्याओं में पारंगत कराया जाता था। ये तो ऐसी विद्याएँ थीं, जिनका उल्लेख वेदों में भी आता है। धनुर्विद्या के प्रति ब्राह्मण छात्रों का आकर्षण भी कुछ कम नहीं था और उनके लिए इसकी छूट भी थी। महाभारत काल में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, परशुराम के उदाहरण हैं ही।

आधुनिक काल में गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार का स्मरण भी किया जा सकता है। भारत के स्वाधीनता संग्राम में भी जिसकी अपनी विशेष भूमिका रही है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन और हिंदी के पाणिनि कहे जाने वाले आचार्य किशोरी दास वाजपेयी भी इसी गुरुकुल के स्नातक रहे हैं। वैदिक धर्मानुयायी आर्य समाजियों ने इस तरह की पहल उस साम्राज्यवादी शिक्षा के विरुद्ध की, जिससे प्रत्येक भारतीय अपने और जातीय 'स्व' की पहचान करने में समर्थता का अनुभव कर सके। प्राचीन गुरुकुलों की मंशा यही रही है, ऐसा कहना असंगत तो नहीं माना जाएगा।

भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना चिंतन

वर्तमान में, पश्चिम से उद्भूत एक ज्वलंत विषय है—चेतना (Consciousness)। पश्चिम में चेतना का क्या स्वरूप रहा है तथा भारत की ज्ञान-परंपरा में चेतना का क्या स्वरूप रहा है? यही आलेख का प्रतिपाद्य विषय है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से, पश्चिम में मनोवैज्ञानिकों, मनोचिकित्सकों के मध्य, तंत्रिका विज्ञानशोध (Neuro Science Research) के अंतर्गत, चेतना विषय तेजी से उभरा और सारे विश्व के विश्वविद्यालयों में फैल गया। पश्चिम में 'चेतना' प्रयोगशाला का विषय बन गया। चेतना विषय पर, पश्चिम के पाँच विद्वानों की कृतियाँ पढ़ने का अवसर मिला। ये लेखक तथा उनकी कृतियाँ हैं— विलियम जेम्स—'दी प्रिंसिपल्स ऑफ साइकॉलोजी', पार्ट प्रथम; डेनियल सी. डैनेट—'कॉन्शसनेस एक्सप्लेन्ड'; जूलियन जेन्स—'दि ओरिजिन ऑफ कॉन्शसनेस इन दी ब्रेक डाउन ऑफ बाइकैमरल माइन्ड'; स्टानिस्लास डेहाने—'कॉन्शसनेस एंड दी ब्रेन'; अनिल सेठ—'बीइंग यू'। उपरोक्त सभी विद्वान चेतना को मनोकेंद्रित विषय मानते हैं। चित्त के परे (Beyond Mind) चेतना को समझने का पश्चिमी विद्वानों ने प्रयास नहीं किया।

डॉ. एस.सी. मिश्रा

- राजकीय महाविद्यालय, राजस्थान से सेवानिवृत्त होकर निरंतर शोधपरक लेखन में रत।
- अधिकांश लेखन राजस्थान इतिहास से संबंधित।
- 'बात मेरे अंतर्मन की' (कविता-संग्रह), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से 'जीवन जिज्ञासा और शास्त्र' पुस्तक के अतिरिक्त, अन्य प्रकाशन से कुल नौ पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 9461017825

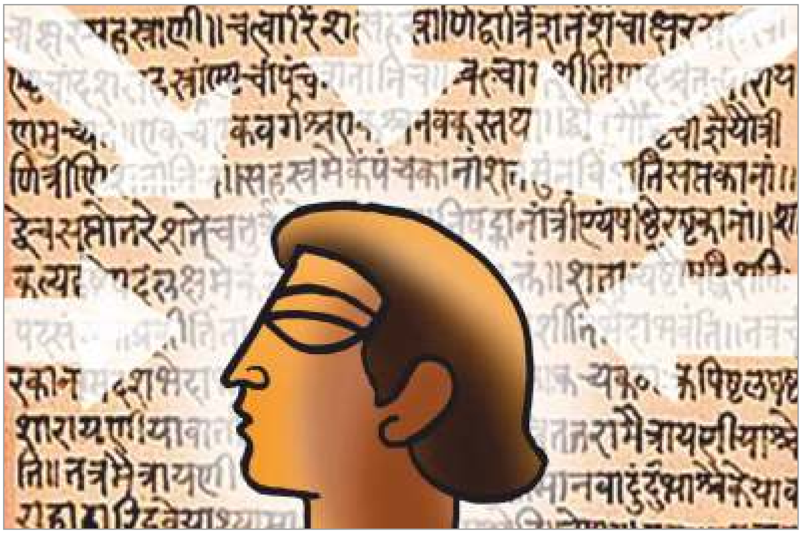

मनोविज्ञानियों ने चेतना के आधार रूप में 'मैं' (I) को माना, जिसके क्रियाकलाप तथा ऊर्जा को समझने और उसका उपयोग भौतिक दृष्टि से करने का प्रयास किया। अनिल सेठ ने, चेतना के अध्ययन में 'मैं' के साथ 'तुम' (You) को भी सम्मिलित किया। मनोकेंद्रित चेतना का विकास क्रमशः 'आई' से 'यू' , फिर 'वी' (हम) तथा 'दे' (अन्य) तक फैल गया। इस प्रकार, चेतना का एक त्रिभुजीय स्वरूप सामने आया। इस त्रिभुज का आधार 'आई' और 'यू' (मैं/तुम) बने, दूसरी भुजा, 'आई' तथा 'यू' को समाहित 'वी' (हम) की बनी, तीसरी भुजा में 'दे' (अन्य/समाज) की निर्मिति हुई। तीनों की चेतना भुजाओं के मूल में, अहंकार (युक्त) 'मैं', की चेतना आधारभूत थी।

मनोविज्ञानियों ने निश्चय ही मनुष्य की 'मैं' की चेतना को जाग्रत करने एवं चेतना की ऊर्जा के महत्व को समझने और फिर उसका ठीक से उपयोग करने का मार्ग प्रशस्त किया। किंतु संपूर्णता की दृष्टि से, प्रयोगशाला से जुड़ा चेतना का शोध, अपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण था। चेतना के शोध, चित्त तक सिमटने से विवेक (चेतन) उपेक्षित रह गया। दूसरी बात, त्रिभुज का शीर्ष स्थान रिक्त होने से, मनोकेंद्रित चेतना का मूल स्रोत अज्ञात ही रहा है। विवेक की उपेक्षा एवं चेतना के मूल स्रोत (Source) के अभाव से मन तथा इंद्रियाँ स्वच्छंद हो गए। मैं, तुम, हम, वे की अहंकार युक्त चेतना परस्पर टकराने लगी।

चेतना की ऊर्जा के मूल स्रोत, जहाँ से चित्त की चेतना को अनवरत ऊर्जा मिलती है, की अनुपस्थिति से, चित्त की सीमित ऊर्जा का, द्वंद्वयुक्त जीवन के तनाव, राग-द्वेष की उठा-पटक से, क्रमशः ह्रास होता गया।

चेतना को लेकर किये गए पश्चिमी विद्वानों के शोध इन विषयों पर मौन रहे—जीवन के अंतिम पड़ाव में चेतना का क्रमिक विनाश कैसे रोका जाए? जीवनपर्यंत चेतना को अक्षुण्ण कैसे बनाए रखा जाए? इसकी गुणवत्ता को उत्तरोत्तर कैसे विकसित किया जाए?

उक्त सभी प्रश्नों के सारगर्भित उत्तर भारतीय ज्ञान परंपरा के संवाहक ग्रंथ वेद, उपनिषद्, भागवत पुराण, पातंजल योगसूत्र तथा भगवद्गीता में उपलब्ध होते हैं।

मनुष्य की चेतन-ऊर्जा का ह्रास क्यों होता है? और वो कैसे रुके? इन प्रश्नों के पीछे, वैदिक चिंतन में, मनुष्य की अमर्यादित भोगवृत्ति, कर्ता होने का अहं भाव, जगत के व्यक्तियों तथा वस्तुओं के प्रति अतिशय लगाव तथा ज्ञान के नितांत अभाव को माना गया है।

वैदिक चिंतन में मनुष्य की उक्त कमियों के समाधान हेतु दोतरफा काम किया गया। सबसे पहले, वैदिक मनीषियों ने मनुष्य के जीवन के केंद्र में परमात्मा को प्रतिष्ठित किया, अर्थात् मनोकेंद्रित चेतना को चित्त सें निकालकर, 'चेतना त्रिभुज' के एपेक्स पर स्थित, रिक्त स्थान पर, परमात्मा को प्रतिष्ठापित किया। चेतना के एपेक्स शीर्ष पर परमात्मा के प्रतिष्ठित होने से कई अज्ञात सवालों के जवाब मिले। प्रथम, चेतना मन के बंधन से बाहर निकल, बुद्धि तथा विवेक की ओर उन्मुख हुई, द्वितीय, मनुष्य के अहंता-ममता के भारी बोझ से दबी चेतना को हल्कापन महसूस हुआ, तृतीय, चित्त की ऊर्जा को परमात्म-चेतना की ओर से एक अजस्र स्रोत प्राप्त हो गया, चतुर्थ, अब चेतना की नदी[1] में निरर्थक विचार-प्रवाह के स्थान पर ज्ञानयुक्त, विवेकयुक्त, परमात्म-प्रेरित विचारों के प्रवेश की गुंजाइश बनी। पंचम, मनुष्य की सीमित, क्षरणशील चेतना को, परमात्मा से जुड़ते ही नयी ऊर्जा मिली, उसके विकास की संभावनाएँ भी बढ़ीं।

वेद में, परमात्मा को सृष्टि की एकमात्र सत्ता मानकर 'तदेकं' शब्द का प्रयोग किया गया है।[2] चेतना के शिखर पर ब्रह्म को प्रतिष्ठित करने के अलावा, वैदिक मनीषियों ने, चेतन ऊर्जा को व्यवस्थित, संरक्षित, संवर्धित करने के लिए अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी किए। उदाहरणार्थ, वेद ने 'ॠत' (Cosmic order) तथा 'सत्' के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया।[3] मन को प्रशिक्षित करने के लिए 'शिव संकल्प के सूत्र' दिए,[4] मृत्यु के चिंतन का निषेध किया,[5] विवाह की संस्था का गंभीरता से सूत्रपात किया,[6] राष्ट्राध्यक्षों तथा आचार्यों को ब्रह्मचर्य पालनार्थ निर्देश दिए।[7]

भारतीय ज्ञान परंपरा के दो महत्वपूर्ण पहलू अथवा चरण रहे हैं, पहला, 'अथातो धर्म जिज्ञासा' तथा दूसरा, 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'। पूर्व मीमांसा का प्रथम सूत्र है, 'अथातो धर्म जिज्ञासा'। वेदों में चेतना के धार्मिक पहलू के अंतर्गत, यज्ञ-कर्म जीवन के केंद्रीभूत विषय रहे। वैदिक काल में स्वर्ग सहित समस्त कामनाओं की पूर्ति निमित्त, यज्ञ आयोजित होते रहे।

उपनिषदों में चेतना-चिंतन के परिप्रेक्ष्य में बदलाव आया। अब यज्ञ-कर्म के स्थान पर ज्ञान-कर्म महत्वपूर्ण हो गए। धर्म-जिज्ञासा का स्थान ब्रह्म-जिज्ञासा ने लिया। बड़े-बड़े गुरुकुलों में व्यापक पैमाने पर, ज्ञानीजन आत्म विद्या या ब्रह्म विद्या की ओर आकर्षित हुए। गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी के मध्य आत्म तथा ब्रह्म विद्या को जानने की इच्छा से प्रेरित, महत्वपूर्ण संवाद हुए। इनमें यमराज-नचिकेता संवाद (कठोपनिषद्) तथा याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद (बृहदारण्यक उपनिषद्) आध्यात्मिक चेतना की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

ब्रह्म को लेकर वेद तथा उपनिषद् में मूलभूत अंतर नहीं है। दोनों के बीच यह अंतर तत्वगत न होकर, बाहरी स्वरूप को लेकर है। मीमांसा और वेदांत दर्शन में वेद को 'शब्द ब्रह्म' कहा गया है। वेद में ब्रह्म, शब्द रूप में अभिव्यक्त हुआ है तो उपनिषद् में ब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप की विवेचना हुई है। उपनिषदों में, चेतना की दृष्टि से, दो महत्वपूर्ण बिंदुओं—ब्रह्म तथा आत्मा की विशेष विवेचना हुई है। ब्रह्म के विषय में कहा गया है कि यह निर्गुण-निराकार, अव्यक्त है तथा इसकी चेतना शुद्धतम है। ब्रह्म को सत्य, ज्ञान तथा अनंत कहा गया है। वह शुभ, समस्त ज्योतिर्मय पदार्थों की ज्योति है। इसी प्रकार, आत्मा के बारे में उपनिषद् में बताया गया है कि यह नित्य ज्ञान स्वरूप, अजन्मा, नित्य शाश्वत है।[8] आत्मा-परमात्मा के बीच साम्यता बताते हुए 'तत्वमसि', 'अहम् ब्रह्मास्मि',[9] 'सोहम्' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

उपनिषद् में मनुष्य के चेतना की पहचान शरीर में अवस्थित मन के माध्यम से नहीं, अपितु परमात्मा के अविभाज्य अंश 'आत्मा' के माध्यम से की गई है। उपनिषद् के ऋषि का इसलिए यह आग्रह है कि मनुष्य साधना के द्वारा अपने चेतना के स्तर को उठाकर परमात्मा चेतना तक ले जाए। आत्मा से परमात्मा तक चेतना का विकास, मनुष्य का अधिकार ही नहीं, कर्तव्य भी है। ऐसा करके मनुष्य को 'प्रेय' तथा 'श्रेय', दोनों की प्राप्ति होगी, धर्मयुक्त अर्थ तथा काम के साथ, मोक्ष की भी प्राप्ति होगी।

उपनिषद् का ऋषि जानता है—चेतना की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार के लिए आवश्यक आचरणपरक ज्ञान तथा सतत् प्रयास अनिवार्य है। इस हेतु उपनिषद् के ऋषि ने कुछ महत्वपूर्ण बातें कहीं। जैसे—सतत् गतिशील काल का अनुसरण करते हुए 'चरैवेति' से संबंधित पाँच मंत्र बताए।[10] ओंकार साधना से जुड़ने की बात कही।[11] सत्य बोलो, धर्म पर चलो, स्वाध्याय करो, माता-पिता तथा आचार्य का देवतुल्य आदर करो।[12] छान्दोग्योपनिषद् में मन के निग्रह हेतु ज्ञान तथा वैराग्य को आवश्यक माना गया है। चेतना के पूर्ण विकास की दृष्टि से ईशावास्योपनिषद् में कही गई तीन बातें साधक

के लिए महत्वपूर्ण हैं। प्रथम, ब्रह्म पूर्ण है तथा यह जगत भी पूर्ण ही है, क्योंकि उस पूर्ण परमेश्वर से ही यह पूर्ण (जगत) उत्पन्न हुआ है, पूर्ण में से पूर्ण निकल जाने पर पूर्ण ही शेष रहता है।[13] द्वितीय, ईश्वर के द्वारा रचे गए इस संसार में जो कुछ भी भोग्य पदार्थ हैं उन्हें 100 वर्षों तक भोगते रहो, पर इनमें आसक्त न हो, क्योंकि यह धन-संपत्ति किसी एक की नहीं है।[14] तृतीय, ज्ञान तथा कर्म (विद्या तथा अविद्या) के तत्वों को, जो भी एक साथ ठीक से जान लेता है, वही मृत्यु को पार कर अमृत को प्राप्त करता है।[15]

वेद तथा उपनिषद् में, चेतना के संदर्भ में जो वैचारिक यात्रा शुरू हुई, उसे आम जन तक भक्ति के माध्यम से पहुँचाने का काम वेदव्यासकृत भागवतपुराण के माध्यम से संपन्न हुआ। भागवत ग्रंथ ने भागवत-धर्म के माध्यम से भक्तियुक्त चेतना को व्यापक जनाधार प्रदान किया। भागवत में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जब भक्त ने विपत्ति के समय कृष्ण के रूप में अध्यात्म की शीर्ष सत्ता से जुड़कर मानसिक स्थिरता तथा आंतरिक गरिमा के साथ, आत्मा की रोशनी को जलाए रखा। ग्रंथ में चेतना की तरल-सरल अभिव्यक्ति की दृष्टि से पांडवों की माता कुंती, भीम पितामह तथा गजेंद्र जी की, श्रीकृष्ण के प्रति 'स्तुतियाँ' बड़ी मार्मिक हैं। भागवत का उपदेश शुकदेव जी द्वारा मृत्यु के सन्निकट राजा परीक्षित को सुनाया गया।

चेतना के सुनिश्चित विकास की दृष्टि से ज्ञानी, अनुशासित साधकों के हितार्थ, 'पातंजलि योग सूत्र' में प्रस्तावित योग मार्ग बड़ा उपयोगी है। चेतना, साधक मनुष्य की ऊर्जा है। योगस्थ चित्त ही सर्वोच्च भगवत चेतना के द्वार पर दस्तक देने में प्रभावी ढंग से समर्थ हो पाता है। योग सूत्र के द्वारा प्रस्तावित अष्टांग योग, परमात्म-सत्ता से जुड़ने का सटीक मार्ग है। 'योग सूत्र' में चित्त की अव्यवस्थित वृत्तियों के निरोध के माध्यम से, योग संबंधी यौगिक तकनीक की विस्तार से चर्चा की गई है। मनुष्य की सीमित तथा अपूर्ण चेतना (ऊर्जा) को परम चेतना (Supreme Consciousness) से जोड़कर, समग्रता के साथ विराट तथा पूर्ण करने का संदेश भगवद्गीता में उपलब्ध है। सत्य-असत्य के बीच होने वाले महाभारत युद्ध में अर्जुन की चेतना (आंतरिक ऊर्जा) मोहग्रस्त, अहंकारयुक्त होकर अचानक शून्यवत हो गई। इसके बाद उसने भगवान कृष्ण के सामने अपना धनुष नीचे रख युद्ध के लिए मना कर दिया। अर्जुन की इस मनःस्थिति में उसकी चेतना-स्मृति को पुनर्जीवित (Revival) करने के लिए श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया वह गीता में संगृहीत है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लक्षित करते हुए मानव-कल्याण की दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण बातें कहीं—

(1) चर-अचर से युक्त संपूर्ण सृष्टि परमात्मा की रची हुई है। प्राणिमात्र परमात्मा का ही अंश है।[16] समस्त जीवों में उन्हीं की चेतना (ऊर्जा) व्याप्त है।

(2) भगवान का अंश होने के नाते मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मोह-अहंकार से मुक्त होकर अपनी चेतन-ऊर्जा को पूर्णरूपेण विकसित करे, जिससे उसका आत्मोद्धार हो सके। आत्मोद्धार के कार्य में मनुष्य का कोई सहायक नहीं है, वह स्वयं अपना 'बंधु' है और स्वयं अपना शत्रु है।[17]

(3) मनुष्य अपने उद्धार के लिए कामनारहित, फलासक्ति रहित, ईश्वरार्पित भाव से अपने स्वधर्म का पालन[18] पूरी तन्मयता से करे।

(4) स्वधर्म पालन के लिए कर्म करना आवश्यक है। सामान्य तरीके से कर्म करने से चेतना का समुचित विकास संभव नहीं है। इसलिए श्रीकृष्ण कर्म में कौशल (Efficiency) के लिए योग की बात करते हैं। चेतना के चरम बिंदु को छूने पर (योग होने पर) कर्म कौशल का चरम आ जाएगा और कर्म बंधन का कारण न बनकर 'अकर्म' बन जाएगा।

(5) कर्म में चरम कौशल प्राप्ति हेतु शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्य आवश्यक है। इस संबंध में श्रीकृष्ण युक्तता (Propriety) की बात करते हैं।[19] अर्थात्, दैनिक जीवनचर्या ऐसी हो, जिससे तीनों स्वास्थ्य (तन, मन, आत्मा) की ठीक से सँभाल हो सके।

युक्ताहार विहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वपनावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा।।[20]

दुखः मिटाने का एक ही योग है—आहार, विहार (Entertainment) तथा जीविकोपार्जन की समयावधि निश्चित हो। साथ ही अपनी जीवनचर्या पर अवबोध अथवा विचार (Reflection) भी करें कि क्या वह सही पटरी पर चल रही है।

(6) परम चेतना से युक्त होने के तीन मार्ग हैं—ज्ञान, कर्म, भक्ति। ये मार्ग अलग-अलग नहीं हैं, अपितु समन्वित रूप से संचालित होते हैं। संक्षेप में कहें तो ज्ञानयुक्त, ईश्वरार्पित निष्काम कर्म।

पश्चिम में चेतना का मॉडल सिर्फ चित्त से युक्त है, जबकि भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना का उत्स परमात्मा हैं। वहीं से निकलकर चेतन-ऊर्जा, मनसहित अंतःकरण में पहुँचती है। परमात्मा से उद्भूत ये चेतना, शरीर-मन, अंतःकरण में प्रविष्ट हो, संपूर्ण जीवन को संचालित करती है।

संदर्भ तथा टिप्पणियाँ

1. अमरीकी मनोविज्ञानी विलियम जेम्स चेतना को निरंतर प्रवादित होने वाली विचारों की नदी ही मानते हैं।; 2. ऋग्वेद, 10.129.2; 3. ऋग्वेद, 10.190.1, सत् अर्थात सत्य, अस्तित्व, वास्तविक; 4. यजुर्वेद, 34.1-6; 5. अथर्ववेद, 8.1.10; 6. अथर्ववेद में विवाह से संबंधित चौदहवें काण्ड में 2 सूक्त तथा 139 स्त्रोत हैं।; 7. अथर्ववेद, 11.07.24, 17; 8. कठोपनिषद्, 1.2.18-19; 9. देखें छान्दोग्योपनिषद् 6.16-3 तथा बृहदारण्यकोपनिषद्, 1.4.10; 10. ऐतरेय, ब्राह्मण उत्तरार्द्ध, 33.3.1-5; 11. तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली चतुर्थ अनुवाक 8; माण्ड्क्योपनिषद्, 8-12; प्रश्नोपनिषद् 5.1.7; छान्दोग्योपनिषद् 1.1.2-3, 1.2.1, 1.4.5; 12. तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, 11.1-3; 13. ईशावास्योपनिषद्, शांति पाठ; 14. ईशावास्योपनिषद, 1-2; 15. ईशावास्योपनिषद्, 9; 16. भगवद् गीता, 15.7; 17. भगवद् गीता, 6.5; 18. भगवद् गीता, 3.35; 19. भगवद् गीता, 2.50; 20. भगवद् गीता, 6.17

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से लेकर एनसीईआरटी की नूतन पाठ्य-सामग्री तक

भारतीय ज्ञान परंपरा की अद्भुत छटा

इतिहास साक्षी है कि किसी भी देश के विकास की आधारशिला उसकी स्वयं की ज्ञान परंपरा होती है। दीर्घकाल तक परतांत्रिक विदेशी शासन और शिक्षा किसी भी देश और समाज का मनोबल और स्वाभिमान क्षीण कर देती है। अतः देश और समाज के विकास के लिए आवश्यक है कि उसकी शिक्षा व्यवस्था उसके स्वयं के मूल्यों, आदर्शों और व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए हो। चीन, जापान, जर्मनी, कोरिया और ऐसे सभी विकसित देश इसके उदाहरण हैं। भारत की आजादी के पश्चात् से ही यद्यपि हमारे देश में शिक्षा में सुधार किये गए, परंतु वे पूरी तरह से हमारी ज्ञान परंपरा और विरासत को केंद्र में रखकर नहीं किये गए। यही कारण था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हमारी कई पीढ़ियाँ औपनिवेशिक और भारतीय शिक्षा के बीच एक सँकरी पगडंडी पर चलते हुए आगे बढ़ती रही।

प्रो. दिनेश प्रसाद सकलानी

- वर्तमान में एन.सी.ई.आर.टी.(राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्), नई दिल्ली में निदेशक के पद पर कार्यरत
- वे इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडीज, शिमला के विजिटिंग फेलो रहे हैं
- भारतीय इतिहास कांग्रेस के आजीवन सदस्य
- 33 वर्षों से अधिक का अध्यापन अनुभव
- 06 से अधिक पुस्तकें एवं 60 से अधिक शोध-पत्र विभिन्न राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय जर्नलों में प्रकाशित
- 150 से अधिक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय सेमिनार, सम्मेलनों में सहभागिता; अमेरिका, यूरोप एवं एशिया के अनेक देशों की अकादमिक यात्राएँ
- अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से सम्मानित

प्राचीन भारत की गुरुकुल शिक्षा पद्धति पंचकोशीय सिद्धांत पर आधारित थी। यह परंपरा केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न होकर शिष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व-निर्माण को लक्ष्य मानती थी। इसके अंतर्गत व्यक्ति में ज्ञान के साथ-साथ जिज्ञासा, आत्मानुशासन, नैतिकता और समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का संवर्धन किया जाता था।

उस समय शिक्षा जीवन को दिशा देने का माध्यम मानी जाती थी, न कि आजीविका का साधन मात्र। किंतु औपनिवेशिक कालखंड में भारत की यह गौरवशाली परंपरा क्रमशः उपेक्षित होती चली गई। अंग्रेजों द्वारा निर्मित शिक्षा नीति ने भारतीय शिक्षा को केवल नौकरी प्राप्ति का साधन बनाने तक सीमित कर दिया, जिसके कारण हमारी आत्मबोधपूर्ण, अनुभवसिद्ध एवं व्यावहारिक ज्ञान परंपरा शिक्षा व्यवस्था से तिरोहित हो गई। इस परिवर्तन ने भारतीय समाज को उसकी बौद्धिक जड़ों से विच्छिन्न कर दिया।

इसी पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय शिक्षा पद्धति को स्वदेशी, स्वावलंबी और प्रभावकारी बनाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लागू की गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, आधारभूत स्तर की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (एन.सी.एफ.एफ.एस.) की रूपरेखा तथा विद्यालयी शिक्षा

हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (एन.सी.एफ.एस.ई.) की रूपरेखा में भारतीय ज्ञान परंपरा को न केवल महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, अपितु विद्यालयी शिक्षा के इन मूलभूत अभिलेखों के दर्शन में ही यह विचार

> **प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं था, अपितु यह आत्मा की पूर्ण पहचान और स्व की मुक्ति के लिए था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभि जैसे प्राचीन भारत के विश्व स्तरीय संस्थानों ने बहु-विषयक शिक्षा और शोध में उच्चतम मानक स्थापित किए और विभिन्न पृष्ठभूमियों और देशों से आए विद्वानों और विद्यार्थियों का सत्कार किया। भारतीय शिक्षा प्रणाली ने अनेक महान विद्वानों को जन्म दिया, जैसे—चरक, सुश्रुत, आर्यभट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणिदत्त, माधव, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगल, शंकरदेव, मैत्रेयी, गार्गी, तिरुवल्लुवर आदि, जिन्होंने गणित, खगोलशास्त्र, धातु विज्ञान, चिकित्सा और शल्य चिकित्सा, सिविल इंजीनियरिंग, वास्तुकला, जहाज-निर्माण और नेविगेशन, योग, ललित कला, शतरंज और अन्य क्षेत्रों में विश्व ज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया।**

परिलक्षित होता है। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है, जो भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को अक्षुण्ण रखते हुए 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों, जिनमें एस.डी.जी.4 सम्मिलित है, के संयोजन में शिक्षा व्यवस्था, उसके नियमन और गवर्नेंस सहित, सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पृष्ठ संख्या 4 में स्पष्ट उल्लिखित है, 'प्राचीन और शाश्वत भारतीय ज्ञान और विचारों की समृद्ध विरासत इस नीति के लिए मार्गदर्शक रही है। ज्ञान (ज्ञान), प्रज्ञा (बुद्धिमत्ता) और सत्य(सत्य) की खोज को भारतीय विचार और दर्शन में हमेशा मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं था, अपितु यह आत्मा की पूर्ण पहचान और स्व की मुक्ति के लिए था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभि जैसे प्राचीन भारत के विश्व स्तरीय संस्थानों ने बहु-विषयक शिक्षा और शोध में उच्चतम मानक स्थापित किए और विभिन्न पृष्ठभूमियों और देशों से आए विद्वानों और विद्यार्थियों का सत्कार किया। भारतीय शिक्षा प्रणाली ने अनेक महान विद्वानों को जन्म दिया, जैसे—चरक, सुश्रुत, आर्यभट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणिदत्त, माधव, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगल, शंकरदेव, मैत्रेयी, गार्गी, तिरुवल्लुवर आदि, जिन्होंने गणित, खगोलशास्त्र, धातु विज्ञान, चिकित्सा और शल्य चिकित्सा, सिविल इंजीनियरिंग, वास्तुकला, जहाज-निर्माण और नेविगेशन, योग, ललित कला, शतरंज और अन्य क्षेत्रों में विश्व ज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया।'

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और एन.सी.एफ.(एफ.एस.) तथा एन.सी.एफ.(एस.सी.) के सिद्धांतों के आधार पर विकसित नवीन पाठ्यपुस्तकों में भारतीय दृष्टिकोण, परंपरा और मूल्यों को समुचित स्थान दिया गया है।

एनसीईआरटी द्वारा विकसित कक्षा 1 से 8 तक की नवीन पाठ्यपुस्तकों में भारतीय ज्ञान परंपरा को समावेशित करते हुए विद्यार्थियों के मनोविज्ञान, भाषा-क्षमता, रचनात्मकता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक बोध का विशेष ध्यान रखा गया है। यह समावेशन केवल परंपराओं के गौरवगान तक सीमित न होकर छात्रों के अंदर एक ऐसी दृष्टि को विकसित करने का प्रयास है, जो अपने परिवेश, संस्कृति, जीवनशैली और मूल्यों को गहराई से जोड़ती है।

ये पुस्तकें विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थियों तक पहुँच चुकी हैं और उनके अभिभावक और शिक्षक भी अलग-अलग कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों से परिचित भी हो चुके होंगे। तथापि, यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर और विषय की कुछ विशेषताओं को एक साथ समझा जाए।

आधारभूत स्तर की हिंदी, अंग्रेजी व उर्दू की पाठ्यपुस्तकों के नाम 'सारंगी', 'मृदंग' व 'शहनाई' रखे गए हैं। आरंभिक स्तर की हिंदी, अंग्रेजी व उर्दू पुस्तकों के नाम क्रमशः 'वीणा', 'संतूर' व 'सितार' रखे गए हैं। मध्य स्तर की इन पाठ्यपुस्तकों के नाम क्रमशः 'मल्हार', 'पूर्वी' व 'ख्याल' रखे गए हैं। ये नाम इसी विचार से चुने गए हैं कि विद्यार्थी भारतीय वाद्ययंत्रों और रागों से भी परिचित हों। इसी प्रकार, पाठ्यपुस्तकों के आवरण चित्र विद्याथियों को उनके आस-पास के संसार तथा भारतीय संस्कृति एवं उसके विभिन्न आयामों से परिचित करवाते हैं। इन पाठ्यपुस्तकों के नाम और आवरण पृष्ठ बच्चों को अपनी संस्कृति के आनंदमय तत्व की ओर आकृष्ट करते हुए भाषा को सुगमता से सीखने के लिए उत्प्रेरित करते हैं। एनसीईआरटी की कुछ पुस्तकों का उल्लेख करना यहाँ समीचीन प्रतीत होता है।

कक्षा 2 की हिंदी पाठ्यपुस्तक 'सारंगी' में 'बीज' कविता विद्यार्थियों को प्रकृति के साथ जुड़ाव, जिज्ञासा और रचनात्मकता का बोध कराती है, जबकि 'किसान' नामक अध्याय विद्यार्थियों को भारतीय कृषि, संस्कृति और श्रम के महत्त्व से परिचित कराता है।

अंग्रेजी की 'संतूर' पुस्तक में भारतीय हस्तशिल्प, कठपुतलियाँ, पारंपरिक व्यंजन जैसे खिचड़ी और विभिन्न राज्यों की विविधताओं को रचनात्मक गतिविधियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। कला की पुस्तक में विद्यार्थियों को भारतीय संगीत, नृत्य, वाद्ययंत्र, रंगोली, दीपक और ताल-लय के मूलभूत तत्वों से परिचित कराया गया है। साथ ही, पंडित रविशंकर, पुरंदरदास और मुत्तुस्वामी दीक्षितर जैसे महान संगीतज्ञों का उल्लेख विद्यार्थियों को भारतीय संगीत परंपरा पर गर्व और प्रेरणा से भर देता है।

गणित और विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में प्राचीन भारतीय गणितज्ञों और वैज्ञानिकों, जैसे आर्यभट, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, सुश्रुत और चरक का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि गणित और विज्ञान भारत के मौलिक चिंतन से उद्भूत विषय रहे हैं। उदाहरणस्वरूप, 628 सामान्य संवत् में ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रंथ 'ब्रह्मस्फुटसिद्धांत' में भिन्नों पर जोड़, घटाव, गुणा और भाग जैसे नियमों को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया, जो आज भी गणित की आधारशिला माने जाते हैं। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए भास्कराचार्य द्वितीय ने 1150 सामान्य संवत् में अपनी प्रसिद्ध कृति 'लीलावती' में 'प्रतिलोम' की संकल्पना को सरल भाषा में समझाया कि एक भिन्न को दूसरे भिन्न से विभाजित करना, पहले को दूसरे के प्रतिलोम से गुणा करने के समान है। 'शुल्बसूत्र', 'लीलावती' और 'ब्रह्मस्फुटसिद्धांत' जैसे प्राचीन ग्रंथ विद्यार्थियों को यह बोध कराते हैं कि भारत की गणितीय परंपरा न केवल सशक्त रही है, अपितु हजारों वर्षों से वैज्ञानिक सोच और तर्क पर आधारित रही है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का वैज्ञानिक और तार्किक पक्ष सदियों तक उपेक्षित रहा है, विशेषकर उस काल में जब वैश्विक शिक्षा प्रणाली पश्चिमी मॉडल के प्रभाव में ढलती गई। गणित, खगोल, चिकित्सा, वनस्पति, धातुकर्म और सामाजिक संरचना के क्षेत्रों में भारत ने जो अद्वितीय योगदान दिया, वह लंबे समय तक या तो अज्ञात रहा या उपेक्षित। अब एनसीईआरटी की नई पाठ्यपुस्तकों में तथ्यों को प्रामाणिक साक्ष्यों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ सम्मिलित किया गया है, जिससे न केवल विद्यार्थियों को अपने गौरवशाली इतिहास की जानकारी मिलती है, अपितु वे यह भी समझ पाते हैं कि भारत की ज्ञान परंपरा किसी भी आधुनिक या वैश्विक प्रणाली से प्राचीन और गुरुतर है।

कक्षा 6 की विज्ञान पुस्तक 'जिज्ञासा' में तैत्तिरीय उपनिषद् की पंक्ति 'अन्नेन जातानि जीवन्ति' में भोजन के महत्व को रेखांकित किया गया है। साथ ही, भारतीय रसोई के वैज्ञानिक तत्व, जल-संरक्षण, चिपको आंदोलन, हिमालयी पारिस्थितिकी और पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियाँ विद्यार्थियों को प्रकृति और जीवनशैली के बीच संतुलन का प्रामाणिक संदेश देती हैं।

विज्ञान की कक्षा 7 की पुस्तक 'जिज्ञासा' में भारतीय चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद, चरक संहिता, पाचन से जुड़े तिरुक्कुरल के श्लोकों तथा पारंपरिक खाद्य पदार्थों, जैसे कांजी, पोइता भात, छाछ, श्रीखंड और गुंद्रुक का विस्तृत उल्लेख किया गया है। यह प्रस्तुति विद्यार्थियों को यह समझाती है कि भारत की पारंपरिक जीवनशैली केवल सांस्कृतिक नहीं, अपितु पूर्णरूपेण विज्ञान-सम्मत और स्वास्थ्य-समर्थ रही है। उदाहरणस्वरूप, चरक संहिता में सुपाच्य आहार, अदरक, काली मिर्च और जीरे जैसे मसालों के प्रयोग को पाचन के लिए लाभकारी माना गया है, वहीं आधुनिक पोषण विज्ञान भी निश्चित समय पर भोजन, सजगता से खाने और अधिक भोजन से बचने की सलाह देता है। तिरुक्कुरल में कहा गया है, 'यदि अगला भोजन करने से पूर्व पहला भोजन पूर्णतः पच जाए, तो किसी औषधि की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।' यह विचार आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

भारतीय खगोलशास्त्र के अंतर्गत आर्यभट, वराहमिहिर और मध्यम रेखा की अवधारणा (जो उज्जयिनी को खगोल गणनाओं का केंद्र मानती थी) को विज्ञान और गणित के अध्यायों में स्थान दिया गया है। पंचांग की सटीकता, ग्रह-नक्षत्रों का ज्ञान तथा खगोलीय घटनाओं की गणना की वैज्ञानिक पद्धतियाँ विद्यार्थियों को समझायी गई हैं। इसी प्रकार, योगाचार्य पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांगयोग, और आयुर्वेदाचार्य चरक एवं सुश्रुत की चिकित्सा संहिताएँ स्वास्थ्य विज्ञान के तर्कसंगत और प्रामाणिक पहलुओं को उजागर करती हैं। हल्दी जैसे पारंपरिक मसालों के औषधीय गुण, ऋतुचक्र की वैज्ञानिक व्याख्या और दंत-स्वच्छता की पारंपरिक विधियाँ, जैसे नीम-बबूल की दातून—सभी उदाहरण यह स्पष्ट करते हैं कि भारत की पारंपरिक जीवनशैली पूरी तरह से विज्ञान-सम्मत रही है।

कक्षा 7 की गणित पुस्तक 'Ganita Prakash' में 'Number Play' अध्याय में तिरुपति मंदिर के स्तंभों पर उकेरे गए नवग्रह यंत्र और 3x3 जादुई वर्ग (Magic Square) का उल्लेख किया गया है।

यह न केवल गणितीय चिंतन की पराकाष्ठा को दर्शाता है, अपितु यह भी बताता है कि भारत में मंदिर केवल आस्था के केंद्र नहीं थे, अपितु गणित और खगोल विज्ञान की उन्नत प्रयोगशालाएँ भी थे। इसी पुस्तक में शुल्बसूत्रों का भी उल्लेख मिलता है, जो लगभग 800 सामान्य संवत् पूर्व के माने जाते हैं और प्राचीन भारत की गणितीय मेधा का प्रमाण हैं। ये रेखागणित पर आधारित ग्रंथ वैदिक यज्ञों में प्रयुक्त वेदियों और अग्निकुंडों के निर्माण से संबंधित थे, जिनमें जटिल ज्यामितीय सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप में प्रयोग किया गया था। शुल्बसूत्रों की विशेषता यह भी है कि इनमें गैर-एकात्मक भिन्नों (non-unit fraction) का प्रयोग और उनके विभाजन की विधियाँ स्पष्ट रूप से वर्णित हैं, जो प्राचीन भारत की गणितीय परंपरा की परिपक्वता को दर्शाती हैं।

सामाजिक विज्ञान की कक्षा 6 की पुस्तक 'समाज का अध्ययन : भारत और उसके आगे' में भी भारत के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वैभव का सटीक प्रस्तुतीकरण किया गया है। इन पाठ्यपुस्तकों में भारत की प्राचीन नागर सभ्यता, वैदिक ज्ञान परंपरा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विद्यार्थियों की भाषा में अत्यंत सुगमता से समाहित किया गया है। उज्जयिनी, कुरुक्षेत्र, महिष्मती और वाराणसी जैसे नगरों का न केवल भौगोलिक दृष्टि से, अपितु ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी वर्णन किया गया है—ये नगर नीतिशास्त्र, धर्म, खगोलविज्ञान और राज्य-व्यवस्था के प्राचीन केंद्र रहे हैं। इसी क्रम में ऋग्वेद, उपनिषद्, पंचतंत्र, जैन और बौद्ध दर्शन जैसे ग्रंथों को विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप भाषा में प्रस्तुत किया गया है, जिससे वे केवल ऐतिहासिक तथ्य ही नहीं, अपितु जीवन के प्रति एक नैतिक दृष्टिकोण भी विकसित कर सकें।

भारतीय सांस्कृतिक और ज्ञान परंपरा से प्रेरणा लेकर कई भारतीय वैज्ञानिक और गणितज्ञों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाई है। श्रीनिवास रामानाजुन, सी.वी. रमन, जगदीशचंद्र बसु और मंजुल भार्गव जैसे विद्वानों ने अपनी संस्कृति और परंपराओं से प्रेरित होकर अपने शोध कार्यों को विश्वस्तरीय पहचान दिलाई। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपनी ज्ञान परंपरा वैज्ञानिक और गणितीय शोध में नवाचार का मार्ग प्रशस्त करती है।

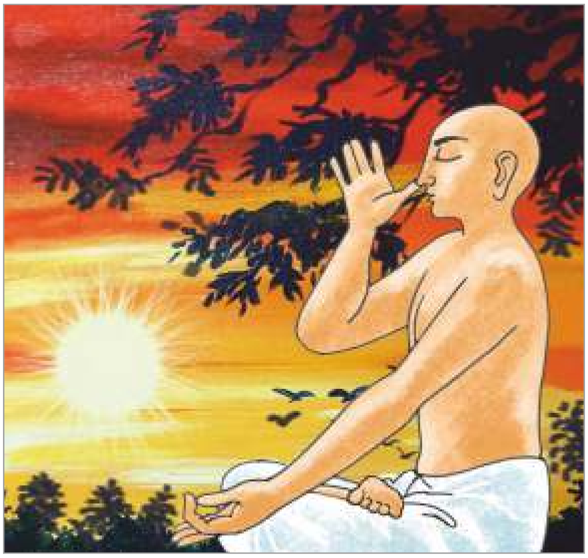

योग और शारीरिक शिक्षा की पाठ्यपुस्तकों, 'खेल-योग' तथा 'खेल-यात्रा' में विद्यार्थियों को शारीरिक व्यायामों के साथ भारतीय जीवन-मूल्यों और आध्यात्मिक परंपरा से भी जोड़ने का प्रयास किया गया है। इनमें महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—का सरल और वैज्ञानिक विवरण दिया गया है। पंचकोश ध्यान की विधि विद्यार्थियों को आत्मचिंतन, एकाग्रता और मानसिक शांति की ओर प्रेरित करती है। इस प्रकार, ये पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थियों को केवल शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति ही नहीं, अपितु मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन के प्रति भी जागरूक बनाती हैं।

इन पाठ्यपुस्तकों में भारतीय पारंपरिक खेलों को भी महत्व दिया गया है, जैसे पिठ्ठू, लट्टू, साँप-सीढ़ी, गिट्टे, कुश्ती और कबड्डी। ये खेल केवल मनोरंजन तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु पारस्परिक सहयोग की भावना, नैतिक निर्णय-क्षमता और रणनीतिक समझ का विकास भी करते हैं। भारतीय साहित्य, नाट्यशास्त्र और सौंदर्यबोध को भी पाठ्यपुस्तकों में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कला की 'कृति' जैसी पाठ्यपुस्तकों में भरतनाट्यम, कथक, कथकली, मणिपुरी, ओडिसी जैसे शास्त्रीय नृत्यों की व्याकरणिक संरचना, मुद्राएँ, भाव और रस के आनंद को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत कर भारतीय कला की मूलभूत संकल्पना एवं भावना गहराई से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

आज हमारे भारतीय खेल, जैसे चतुरंगा और कबड्डी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिल चुकी है। आधुनिक शतरंज, प्राचीन भारतीय खेल चतुरंगा से ही विकसित हुआ है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुपालन में एनसीईआरटी द्वारा विकसित नई पाठ्यपुस्तकें आधुनिक विज्ञान, गणित, कला, शारीरिक शिक्षा और आरोग्य की आधुनिक अवधारणाओं और सिद्धांत को तो आयु-उपयुक्त तरीके से सम्मिलित करतीं हैं, साथ-ही-साथ उनसे संबद्ध भारतीय सांस्कृतिक और ज्ञान परंपराओं के उद्धरणों से विद्यार्थियों को नवीन शोध एवं नवाचार की ओर उन्मुख करती हैं।

एनसीईआरटी की यह पहल वास्तव में नई पीढ़ी को उसकी पहचान, परंपरा और आत्मबल से जोड़ने का मार्ग प्रशस्त करती है। यह शिक्षा की ऐसी पुनर्स्थापना है, जिसमें हर बच्चा नवोन्मेषी सोच के साथ, सांस्कृतिक आत्मबोध से युक्त होकर आगे बढ़ सकता है। ऐसा नागरिक, जो 'लोकल से ग्लोबल' तक की यात्रा गर्व, गरिमा और गंभीरतापूर्वक कर सकता है।

एनसीईआरटी द्वारा पाठ्यपुस्तकों में किये गए ये परिवर्तन शिक्षा को केवल अंकों की प्रतिस्पर्धा तक सीमित न रखकर उसे जड़ों से जोड़ते हुए वैश्विक नागरिक बनने के लिए तत्पर करते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा का यह समावेश शिक्षा को स्थानीय आधार प्रदान कर उसे वैश्विक स्तर पर सुदृढ़ करेगा और भारत को पुनः 'विश्व-गुरु' के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को धरातल पर विद्यार्थियों को धरातल से जोड़े रखते हुए विकसित भारत के निर्माण की यात्रा का सहभागी बनाने हेतु राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इसी प्रकार अन्य कक्षाओं हेतु भी उत्कृष्ट पठन-पाठन सामग्री का निर्माण करने में संलग्न है।

ग्रंथ को गुरु मानने से जुड़ी ज्ञान परंपरा

‘ग्रंथ’ शब्द गूँथने, बाँधने से जुड़ा है। ज्ञान को जिसमें गूँथ दिया जाए, वह ग्रंथ। पर ज्ञान की कहाँ कोई सीमा! इसीलिए हमारे यहाँ कहा गया है, ‘नेति, नेति’। माने इति नहीं है। यह अंत नहीं है। अभी और भी है। अनंत है ज्ञान। अनंत को कोई कैसे गूँथे! इसीलिए शायद कहा गया, ‘ग्रथनात् ग्रंथः’। माने एक साथ नत्थी करना। जमा करना। चिंतन-मनन और अनुभव से जुड़े ज्ञान को

व्यवस्थित करने की दृष्टि इसमें समाई है। जब ज्ञान इस तरह संकलित होता है, ग्रंथ बनता है। ग्रंथ असल में संहिता है। एकत्र ज्ञान। जब-जब ‘ग्रंथ’ शब्द के इस अर्थ में जाता हूँ, ‘गुरु’ शब्द भी इसमें घुला हुआ पाता हूँ। गुरु भी तो ग्रंथ ही होता है! ज्ञान के मार्ग पर ले जाने, उसे सहज, सुगम या कहें व्यवस्थित कर विषय तक पहुँचाने का कार्य गुरु करता है। ग्रंथ जिस तरह पूर्वाग्रहों से मुक्त करता है, अंतर्मन के जालों को साफ कर सोचने की नई दृष्टि प्रदान करता है और बहुतेरी बार समझ के नए झरोखों से आपको अंतर्मन आनंद की अनुभूति कराता है, तब गुरु की ही तो भूमिका निभा रहा होता है!

‘गुरु’ में दो शब्द हैं—‘गु’ और ‘रु’। ‘गु’ यानी अंधकार और ‘रु’ अर्थात् उसको नष्ट करने की क्रिया। इसीलिए गुरु का अर्थ हुआ, वह, जो अंधकार को दूर कर ज्ञान की जोत जगाए। हमारे यहाँ प्राचीन काल से गुरु-शिष्य परंपरा रही है। और भी स्थानों पर रही है, पर ग्रंथ को गुरु मान पूजने की संस्कृति विश्व में कहीं है तो वह हमारे यहाँ है।

ग्रंथ को गुरु मानने की संस्कृति के प्रवर्तक रहे हैं सिखों के दसवें गुरु गोबिंद सिंह। पहले गुरु थे—नानक। नानक ने ही गुरु की अपेक्षा गुरु पद की महत्ता की प्रतिष्ठा की। नानक ने निरंतर यात्राएँ कीं। देश के विभिन्न भागों मे बिखरे हुए संतों की वाणी का संग्रह किया। जहाँ कहीं भी वह गए, वहाँ के प्रमुख संतों से मिले। युग की आवश्यकताओं को अपनी घुमक्कड़ प्रवृत्ति से जाना। नानक गुरु थे, पर गृह त्याग संन्यास की प्रवृत्ति के महत्व को अस्वीकारा। उनका गुरु ज्ञान था, ईश्वर में मन रहे, पर हाथ सांसारिक कर्तव्यों की पूर्ति में लगा रहे। ‘मन करतार महिं अउर कर है किरत मांहि’। का नाद करते उन्होंने चारित्रिक शुद्धता और आचरण की पवित्रता को जिया। नानक ने घूम-घूमकर संतों की जो वाणियाँ एकत्र कीं, उन्हें बाद में आगे चलकर सिखों के पंचम गुरु अर्जुन देव ने ‘आदिग्रंथ’ में संगृहीत

डॉ. राजेश कुमार व्यास

डॉ. राजेश कुमार व्यास देश के जाने-माने कवि, संस्कृतिकर्मी, कला-आलोचक और यात्रा वृत्तांतकार हैं। भारतीय कला-संस्कृति के मौलिक चिंतक के रूप में देश-विदेश में पहचान। भारत सरकार के लेखक प्रतिनिधिमंडल के रूप में फ्रांस, नेपाल, जर्मनी आदि की यात्राएँ।

प्रकाशन : ‘कला-मन’, ‘रंगनाद’, ‘कलावाक्’, ‘भारतीय कला’, ‘रस निरंजन’; यात्रा वृत्तांत—‘नर्मदे हर’, ‘कश्मीर से कन्याकुमारी’, ‘आँख भर उमंग’ तथा ‘कलाओं की अंतर्दृष्टि’ आदि समेत 23 पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : केंद्रीय साहित्य अकादेमी द्वारा वर्ष 2018 में सर्वोच्च सम्मान, राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादेमी का ‘उस्ताद गणेशीलाल व्यास पद्य पुरस्कार’, राहुल सांकृत्यायन अवार्ड एवं पत्रकारिता का विशिष्ट ‘माणक’ अलंकरण, राजस्थान गौरव आदि सम्मान।

संप्रति : अतिरिक्त निदेशक, राज्यपाल, राजस्थान।

संपर्क : मोबाइल– 9829102862

किया। गुरु पद पर रहते अर्जुनदेव ने बलिदानी परंपरा का सूत्रपात किया, पर इसे राजनीतिक और सैनिक स्वरूप प्रदान किया छठे गुरु हरिगोबिंद ने। उन्होंने गुरु रहते दो तलवारें धारण कीं। एक 'मीरी' यानी राजनीतिक शक्ति की और दूसरी 'पीरी' अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति की प्रतीक बनी। मुगल शासक शाहजहाँ के समय से गुरु पद का सशस्त्र संघर्ष प्रारंभ हुआ। गुरु हरिगोबिंद ने चार बार मुगल सेनाओं से युद्ध किया। गुरु गोबिंद सिंह 'सरबंसदानी' थे। अपने सहित पूरे परिवार का दान करने वाले। शस्त्र और शास्त्र, दोनों में निष्णात गुरु गोबिंद सिंह का गुरुमुखी के अलावा फारसी, ब्रज, संस्कृत, बाँग्ला आदि भाषाओं पर भी पूरा अधिकार था। गुरु तेगबहादुर के बलिदान के बाद उन्होंने आनंदपुर के केशगढ़ में खालसा पंथ की स्थापना की। खालसा को उन्होंने 'गुरु' का स्थान दिया और गुरु को खालसा का। समाज में ऊँच-नीच का भेद समाप्त करके उन्होंने जिन्हें खालसा पंथ में दीक्षित किया, चाहे वह किसी भी जाति, संप्रदाय के हों, उन्हें अपने नाम के साथ 'सिंह' शब्द का प्रयोग करने को कहा।

> **"'गुरु ग्रंथ साहिब' किसी एक धर्म का कहाँ है? इसमें सभी धर्मों का सार है। सिखों के हरेक गुरु ने अपने अनुभवों का संचित ज्ञान इसमें सँजोया है। दसवें और अंतिम गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने से पहले गुरु तेगबहादुर जी के 116 शब्द जोड़कर इसे पूर्ण किया। कबीर, रविदास, नामदेव, सैण जी, सघना जी, छीवाजी, धन्ना की वाणी इसमें है तो पाँचों वक्त नमाज पढ़ने में विश्वास रखने वाले शेख फरीद के श्लोक भी इसमें हैं। यह संगीत के सुरों व रागों के प्रयोग में गुँथा है। गुरु ग्रंथ कहें या 'गुरुबानी', यह वह अनूठा उजास है, जिसमें सदा शरीरी गुरु स्वरूप ग्रंथ को ऊँची गद्दी पर 'पधराया' जाता है। उस पर चँवर ढलते हैं। पुष्पादि चढ़ाते और बाकायदा आरती उतारी जाती है।"**

गुरु गोबिंद सिंह ने ही हमारे यहाँ गुरु और ग्रंथ से जुड़े शब्दों की संस्कृति की सुगंध बिखराई। नौ वर्ष की कम उम्र में ही गोबिंद सिंह गुरु गद्दी पर बैठे। यह वह दौर था जब मुगल शासक हिंदुओं को 'चिड़ियों का झुंड' कहते थे। बाज के आने से जैसे चिड़िया भाग जाती है, उसी तरह मुगलों के अत्याचार से हिंदुओं को वह तितर-बितर करते थे। गोबिंद सिंह जी ने तभी प्रतिज्ञा की—'सवा लाख से एक लड़ाऊँ तबे गोबिंदसिंह नाम कहाऊँ।' माने वह इन चिड़ियों के झुंड में वह शक्ति उत्पन्न कर देंगे, जिससे वह बाजों को मारकर खाने लग जाए। एक नए अभिवादन की भी उन्होंने शुरुआत की, 'वाहे गुरुजी का खालसा, वाहे गुरु जी की फतह'।

औरंगजेब ने उनकी वीरता के सामने घुटने टेकते एक बार अपने साथ मिलाने का पत्र लिखा, 'वाहे गुरु को जैसे वह मानते हैं, ऐसे ही उनका अल्लाह है। फिर किस बात की दुश्मनी!' गुरु गोबिंद सिंह ने इनकार करते जवाब दिया, 'नीयत का फर्क बहुत बड़ा है।' औरंगजेब के ही अनुयायी वजीर खाँ ने धर्म परिवर्तन नहीं करने पर गुरु गोबिंद सिंह के बेटों को जिंदा दीवार में चिनवा दिया। अंतिम पड़ाव में गुरु गोबिंद सिंह नांदेड़ में जब प्रार्थना के बाद आराम कर रहे थे, दो युवा पठानों, अताउल्ला खाँ और जमशेद खाँ ने उनके पेट पर छुरे से वार कर बुरी तरह से घायल कर दिया। कुछ समय बाद वह अंतिम गति को प्राप्त हो गए।

अपने अंतिम समय में उन्होंने शब्द की पूरी-की-पूरी हमारी परंपरा में निहित गुरुत्व भाव का उजास दिया। उन्होंने घोषणा की, 'अब से कोई गुरु नहीं होगा। ग्रंथ ही गुरु होगा।'

'गुरु ग्रंथ साहिब' तबसे गुरु रूप में पूज्य हो गया। 'गुरु ग्रंथ साहिब' किसी एक धर्म का कहाँ है? इसमें सभी धर्मों का सार है। सिखों के हरेक गुरु ने अपने अनुभवों का संचित ज्ञान इसमें सँजोया है। दसवें और अंतिम गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने से पहले गुरु तेगबहादुर जी के 116 शब्द जोड़कर इसे पूर्ण किया। कबीर, रविदास, नामदेव, सैण जी, सघना जी, छीवाजी, धन्ना की वाणी इसमें है तो पाँचों वक्त नमाज पढ़ने में विश्वास रखने वाले शेख फरीद के श्लोक भी इसमें हैं। यह संगीत के सुरों व रागों के प्रयोग में गुँथा है। गुरु ग्रंथ कहें या 'गुरुबानी', यह वह अनूठा उजास है, जिसमें सदा शरीरी गुरु स्वरूप ग्रंथ को ऊँची गद्दी पर 'पधराया' जाता है। उस पर चँवर ढलते हैं। पुष्पादि चढ़ाते और बाकायदा आरती उतारी जाती है। विश्व संस्कृति में ग्रंथ को गुरु मान उसके आदर्श के आचरण की ऐसी दृष्टि और कहीं नहीं मिलेगी।

गुरु वह, जो हमें उजास दे। उपनिषद् में कहा गया है कि तुम्हें यदि कोई जिज्ञासा है, तो तप करो। भृगु अपने पिता वरुण ऋषि के पास गए और बोले कि 'मुझे ब्रह्म ज्ञान समझाइए।' उन्होंने कहा, 'तप करो और तप से ब्रह्म जानने की कोशिश करो, क्योंकि तुम्हारे लिए तप ही ब्रह्म है।' भृगु ब्रह्म जानना चाहते हैं और वरुण कहते हैं कि तप ही ब्रह्म है। उन्होंने तप किया। तप करके जाना कि अन्न ब्रह्म है। गुरु ने एकदम नहीं बताया कि अन्न ब्रह्म है, तप करके ज्ञान हुआ, किंतु भृगु को ध्यान में आया कि इससे बढ़कर भी कोई ब्रह्म है। फिर गुरु के पास गए तो गुरु ने पुनः कहा, 'तप करो।' फिर से उन्होंने तप किया। उन्हें मालूम हुआ, प्राण ही ब्रह्म है। उसके बाद फिर गुरु के पास गए। उन्होंने फिर से तप करने को कहा। तप किया तो पता चला कि मन ही ब्रह्म है। बार-बार वह गुरु के पास गए और बार-बार गुरु ने कहा, 'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व।' अंत में भृगु को यह ज्ञात हुआ कि विज्ञान ब्रह्म है। तब उनका समाधान हुआ। इसी का नाम है—'भार्गवी-वारुणी विद्या'।

भृगु शिष्य का नाम है और गुरु का नाम वरुण है। गुरु के नाम से विद्या प्रसिद्ध होनी चाहिए, लेकिन शिष्य ने तप किया, मेहनत की, इसलिए यह 'भार्गवी-वारुणी विद्या' कहलाई।

हमारे यहाँ शिक्षा की गुरुकुल पद्धति क्यों रही है? इसलिए कि शिक्षा ग्रहण करने के लिए शिक्षार्थियों को अनिवार्य रूप से अपने पैतृक स्थान का त्याग करना पड़ता था। गुरुकुल वहाँ होता था, जहाँ कृषि के लिए पर्याप्त भूमि हो, फलों के लिए सघन उद्यान हो, यज्ञादि के लिए वनों की उपलब्धता तथा जलपूर्ति के लिए सरोवर या नदियों की उपस्थिति हो। प्रायः गाँवों, नगरों व जनपदों से दूर वनों या उपत्यकाओं या फिर नदियों के किनारे गुरु का निवास होता। प्रकृति की यह निकटता विद्यार्थी के व्यक्तित्व को अनुभव आलोक देती। बहुत कुछ वह प्रकृति से ही सीखता। उसकी गुरु के साथ परिवेश के प्रति भी श्रद्धा उपजती। सीखने में श्रद्धा का यह भाव नहीं होगा तो सब व्यर्थ होगा।

गुरुकुल में शिष्यों को ज्ञान मिलता था। गुरु परिवेश में निहित तमाम संभावनाओं से शिष्य का साक्षात् कराते ग्रंथों में निहित ज्ञान का बोध कराता था। वहाँ रटाने पर जोर नहीं था। उपनिषद् कथा है, गुरु शिष्य के पास जाकर कहता है कि सत्य के लिए कुछ कहिए। सार्थक जो है, वह बताएँ। गुरु वृक्ष के नीचे बैठे थे। कहा कि एक फल तोड़ो। शिष्य फल तोड़ता है। गुरु कहते हैं, इस फल को टुकड़े-टुकड़े कर तोड़ो। वह बिखेर देता है तो बहुत छोटे-छोटे राइयों की तरह बीज उसमें से निकलते हैं। गुरु बोलते हैं कि बीज को तोड़ो और देखो कि इसमें क्या दीखता है? कुछ भी तो नहीं दिखा उसमें। इस पर गुरु ने कहा कि यह जो 'कुछ भी नहीं' दीखता है उसी 'कुछ नहीं' में सारी संभावना है। हरेक बीज में उसके भविष्य का गंतव्य निहित होता है। वह आँख से देखने में नहीं आता, परंतु उसमें संभावना है, तभी तो वृक्ष के रूप में वह बाद में परिणत होता है। यही बीजांकुर न्याय है। सृष्टि के हर अव्यक्त में इसी तरह व्यक्त होने की सारी संभावनाएँ मौजूद हैं। 'कुछ भी नहीं' में जो संभावनाएँ हैं, उनकी तलाश करेंगे, तभी सार्थक कुछ पाएँगे। यही सत्य है। गुरु इसी तरह से गुरुकुलों में उजास देते थे। वह अपनी बात को पाठ से नहीं, प्रकृति में व्याप्त संभावनाओं से समझाते थे।

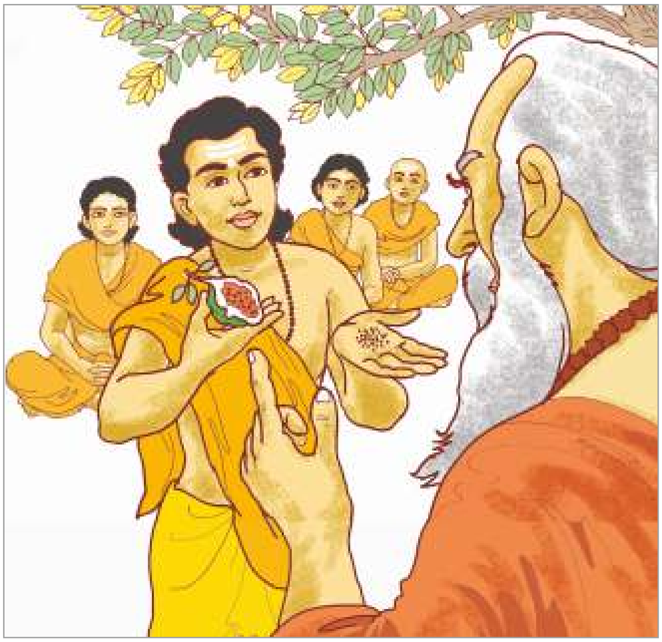

शाक्त तंत्र में भी गुरु का स्थान श्रेष्ठ माना गया है। ज्ञान, मंत्र तथा देवताओं का संयुक्त प्रतीक वहाँ गुरु ही है। आदि गुरु कौन है? भगवान शिव। प्रथम गुरु शिव दिव्यौध अर्थात् दिव्य हैं। इसके बाद सिद्धौध यानी सिद्ध गुरु और फिर मानवीय या मनुष्य गुरु। तंत्र की भाषा में ये 'औधत्रय' हैं। गुरु के बगैर मुक्ति संभव नहीं मानी गई है। यह भी महत्वपूर्ण है कि हमारे यहाँ स्त्री गुरु का स्थान पुरुष गुरु से उच्च माना गया है। गुरु और शिष्य के संबंधों को जोड़ने वाली महती कड़ी दीक्षा है। वामाचार में पिता को गुरु रूप में वरण कर दीक्षा लेना अच्छा नहीं समझा जाता, पर मंत्राधिकारी माँ से दीक्षा ली जा सकती है।

वेदों को हमारे यहाँ विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ माना गया है। पर वेद लिखे किसने? कोई नहीं जानता। सैकड़ों-हजारों वर्षों तक ऋषि-मुनियों का संचित ज्ञान कंठ-दर-कंठ आगे बढ़ा। लिपि का आविष्कार हुआ तो यह अनुभव से, व्यवहार से जुड़ा और वेद लिपिबद्ध हो हमारे सामने आए।

वैदिक ग्रंथ प्रकृति को निवेदित है। अग्नि, वायु, वरुण आदि प्रकृति देवताओं की स्तुति में लिखे मंत्र इनमें हैं। परवर्ती ग्रंथ दर्शन, ब्रह्मांड के रोचक प्रश्नों, कारण, कल्पना में गुँथे हैं। उत्तर वैदिक ग्रंथ 'ब्राह्मण' एवं 'आरण्यक' हैं। पहले ग्रंथ वे हैं, जिनमें पूजा, कर्मकांड की विधियां हैं। दूसरे वे हैं, जिनमें कल्पनात्मक ढंग से विचारणीय तथ्यों का चिंतन स्वरूप सामने आया है। सनातन संस्कृति से जुड़े हिंदू धर्म की पुरातन दार्शनिक विचारधारा की छह प्रणालियाँ—सांख्य, योग, वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत हैं। भगवद्गीता महाभारत से उपजी, परंतु इसे सर्वोत्तम ग्रंथ माना गया है। क्यों? इसलिए कि वह किसी विचार-दृष्टि, किसी विशेष विचार प्रणाली से संबद्ध नहीं है, परंतु उसमें धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक समस्याओं का व्यापक और स्वतंत्र विचार-विमर्श है।

वेदों के दार्शनिक मनन का सूत्रपात आरण्यक ग्रंथों में हुआ। आरण्यक माने वन में लिखे गए ग्रंथ, शास्त्र। ध्यान और धारणा की विशिष्टता को मान्यता देने वाले। वैदिक यज्ञानुष्ठान की बजाय आत्म ज्ञान से जुड़ी यह संहिताएँ हैं। वैदिक देवता प्रकृति की शक्ति के परिचायक हैं। उनका विशेष व्यक्तित्व नहीं है। उनकी तीन प्रमुख

श्रेणियाँ रही हैं, पृथ्वी में स्थित, स्वर्ग के और अंतरिक्ष के देवता। ब्राह्मण ग्रंथ गृहस्थों के लिए, आरण्यक वानप्रस्थों के वृद्धावस्था में गृहस्थ जीवन के उपरांत प्रयोग हेतु और उपनिषद् हमारे यहाँ विश्व बंधन का परित्याग करने वाले मुमुक्षु संन्यासियों के लिए निर्दिष्ट किये गए। उपनिषद् माने वेदांत। इनके ज्ञान से व्यक्ति बंधन मुक्त हो जाता है। शोपेनहार ने इसीलिए अपनी पुस्तक 'वेंल्ट अल्स विल एंड वास्टेलंग' में लिखा, 'उपनिषदों के अनुवाद ने वेदों के अपरिमेय ज्ञान का मार्ग खोल दिया।' उपनिषद् वेदांत इसलिए कहे गए, क्योंकि वे वैदिक साहित्य के उपसंहार रूप में लिखे गए।

उपनिषद् माने निकट बैठकर अर्जित किया ज्ञान। गुरु के निकट बैठकर शिष्य सीखता है। ज्ञान अर्जित करता है। फिर कुछ चिंतनपरक बनता है। पर जो यह ज्ञान एकत्र होता, उस पर मीमांसाएँ होतीं। मीमांसा का अर्थ गंभीर मनन और चिंतन। इसी से बहुत कुछ और ज्ञान उपजता। सब इस पर जब सहमत होते तो फिर संहिता बनती। संहिता माने एकत्र ज्ञान। यानी इस ज्ञान पर सबकी सहमति है। एक विषय का आधार बन गया है, इसलिए समस्त मतों को, परंपराओं को एक स्थान पर एकत्र कर ग्रंथ रच दिया गया। हमारे यहाँ ज्ञान के यह चरण रहे हैं, परंतु फिर भी ग्रंथ कभी पूर्ण नहीं होते। इसीलिए कहा गया, 'नेति-नेति'। माने अभी इति नहीं है। पूर्णता की अनवरत खोज जारी है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देंगे तब भी पूर्ण ही बचेगा। ग्रंथों का मूल यही रहा है। कोई एक सत्य नहीं, कोई एक विचार नहीं।

'एकोनऋषि यश वचः प्रमाणम' से जुड़ी रही है ग्रंथ को गुरु मानने की हमारी संस्कृति। माने हमारी परंपरा में यह जुड़ा रहा है कि एक भी ऋषि ऐसा नहीं है, जिसका वचन प्रमाणित माना जाए। बुद्ध कहते हैं, 'अप्प दीपो भव।' मैंने जो ग्रंथों से बताया, अपने अनुभव से तुम्हें सिखाया वह सब ठीक है, परंतु वही पूर्ण नहीं है। अपने दीपक आप बनो। माने जीवन से जुड़े भाँति-भाँति के संदर्भों से अपना सत्य हम स्वयं तलाशें। ग्रंथो में जो लिखा है, गुरु ने जो बताया, वह ठीक है, पर उसे रटना नहीं है। उसे अपने अनुभव की आँच में पकने देना है। इसी से अपने सत्य की ओर तुम खुद आगे बढ़ सकोगे। यही ग्रंथ को गुरु मानने की संस्कृति है।

गुरु व्यवस्थित रूप में ज्ञान का प्रवाह शिष्यों में करता। इसीलिए विश्व का पहला नाट्यशास्त्र, कामशास्त्र, व्याकरण शास्त्र भारत में रचा गया। कहते हैं, जब इंग्लैंड में पहला विद्यालय खुला था, तब भारत में 7.5 लाख गुरुकुल थे। यह गुरुकुल ज्ञान के बड़े केंद्र थे। गुरुकुल क्या करते थे? ग्रंथों से जुड़े ज्ञान का प्रवाह इस तरह से करते कि शिष्य ज्ञान की उस गंगा को आगे बढ़ाते स्वयं गुरु बन जाएँ।

गुरु की एक संज्ञा हमारे यहाँ तीर्थ है। तीर्थ, यानी जो पार लगा दे। एक अर्थ ग्रंथ भी होता है। वह जो व्यवस्थित करे। गुरु क्या करता है? आपको ज्ञान से संपन्न कर संकटों से, जीवन की कठिन-से-कठिन राह को पार करने की क्षमता प्रदान करता है। पंडित विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में कहूँ, तो गुरु इसीलिए तीर्थ हैं कि वह नदी को पार करना सुगम कराते हैं। पार तो सेतु से भी हो सकते हैं। पुल से भी उस छोर जा सकते हैं, पर तब केवल पार हो जाना होता है। ऊपर से देखकर निकल गए, नाव से पार करने से थोड़ा अधिक सामीप्य रहता है जल से, पर तैरकर या चलकर पार करना ही असली पार करना है, क्योंकि तभी नदी में हम होते हैं और हममें नदी होती है। इसीलिए गुरु को तीर्थ कहते हैं, गुरु साथ-साथ रहता है, हम पार हो जाते हैं, फिर गुरु दूसरे को पार कराता है, पर ज्यों ही हम गुरु के साथ अपने को जोड़ते हैं, हम विद्या की साधना के साथ जुड़ जाते हैं और हम स्वयं गुरु होने की—तीर्थ होने की—क्षमता अपने में अनुभव करने लगते हैं।

बहुत बार गुरु शिष्य को भी इतना ज्ञान संपन्न करता है कि वह उससे भी बड़ा हो जाता है। हमारे यहाँ मीमांसा सूत्र ऋषि जैमिनी ने लिखे। शबर ने इस मीमांसा सूत्र पर एक भाष्य लिखा है। मीमांसा साहित्य में जैमिनी और शबर के पश्चात् कुमारिल भट्ट एवं उनके शिष्य प्रभाकर का नाम आता है। कुमारिल भट्ट अपने शिष्य को गुरु कहते थे। विश्वभर में ऐसा कहीं सुनने में नहीं आएगा कि कोई गुरु अपने शिष्य को गुरु कहे। कथा है कि एक बार कुमारिल एक संस्कृत वाक्य का अर्थ ठीक से नहीं समझ सके। उनके शिष्य प्रभाकर ने संस्कृत वाक्य का सही अर्थ उन्हें समझाया। कुमारिल भट्ट इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने शिष्य को 'गुरु' की उपाधि से अलंकृत कर दिया। आज भी हमारे यहाँ प्रभाकर के मत को 'गुरु मत' के रूप में पुकारा जाता है और कुमारिल भट्ट के मत को 'भाट्ट मत' के नाम से जाना जाता है।

ग्रंथ और गुरु हमारे यहाँ व्यक्ति की आचरणशाला रहे हैं। उनसे सीखकर बड़े होने का भाव उपजता है। प्रयोगशालाओं, विज्ञान के सारे आविष्कार व्यर्थ हैं, यदि ग्रंथ से संबद्ध आचरण की ओर मन प्रवृत्त नहीं हो। विज्ञान और तकनीक लाभकारी है, दुर्गम को सुगम करने का मार्ग भी है। पर इससे जीवन जड़ भी होता जाता है। इस आलोक में देखें तो ग्रंथ जड़ जीवन को जीवंत करने की दृष्टि है। ग्रंथ माने ज्ञान को विज्ञान बनाने की प्रक्रिया। विज्ञान का अर्थ ही होता है विशिष्ट ज्ञान। ग्रंथ इस तक पहुँचने का मार्ग है।

आज पाठ्यपुस्तकें शिक्षा का बड़ा माध्यम बन गई हैं। पहले ऐसा नहीं था। ग्रंथ माध्यम होते थे शिक्षा का। यानी वहाँ शब्द रटने की प्रवृत्ति नहीं थी। शब्द का उजास होता था, पर वह अनुभवों की पाठशाला में पूर्ण होता था।

नारद से जुड़ी महती कथा है। निरंतर भ्रमणशील रहते एक बार वह बहुत बेचैन हो उठे। उनका मन बहुत अशांत था। कभी चलते, कभी बैठ जाते और कभी औचक अपने ही भीतर खो जाते। तभी ब्रह्मर्षि का सर्वोच्च पद प्राप्त चार यमज भाई वहाँ आए। नारद को इस अवस्था में देख उन्होंने पूछा, 'हे महर्षि, आप तो सर्वज्ञान संपन्न

हैं, कुछ ऐसा आप से छूटा नहीं, जो आपने जाना नहीं। फिर भी आप इतने अशांत क्यों हैं?'

नारद ने कहा, 'यही प्रश्न तो मैं अपने आप से पूछ रहा हूँ। मैंने सब विद्याएँ प्राप्त कर लीं। सब गुरुकुलों में अध्ययन कर लिया है, लेकिन फिर भी शांति नहीं मिल रही। आखिर क्यों? क्या आप इसका कारण बता सकेंगे?

उन चारों जुड़वाँ भाइयों में जो सबसे छोटे थे, वह सनतकुमार प्रश्न सुनकर हँसे और बोले, 'महर्षि, इतना ज्ञान प्राप्त करके भी आप अपने अंतर में इस प्रश्न का उत्तर नहीं खोज सके? बहुत सहज है यह तो। आपने शब्द पढ़ा है, उसका अर्थ नहीं पढ़ा।'

नारद सनतकुमार जी की ओर देखते रह गए। बोले, यही तो। यही तो। बहुत सारा पढ़ा है, पर कुछ भी तो याद नहीं है। क्या करूँ? उत्तर मिला, संसार में जाओ और जो शब्द रूपी ज्ञान प्राप्त किया है, उसके अर्थ वहाँ खोजो। तुम्हारा विवेक तुम्हें सत्य को खोजने की राह दिखाएगा। कहते हैं, तब से नारद अपने पढ़े शब्दों का अर्थ खोजने के लिए इस संसार में निरंतर भ्रमण कर रहे हैं। पता नहीं, उन्हें उनके मन की बेचैनी से जुड़े प्रश्नों का उत्तर मिला कि नहीं, पर यह सच है, निरंतर भ्रमण से उन्होंने बहुत कुछ पाया है।

ग्रंथ में छुपे ज्ञान का निहितार्थ भी यही है कि वहाँ जो छपे शब्द हैं, उसके अर्थ व्यक्ति को स्वयं तलाशने पड़ते हैं। शिक्षा का अर्थ ही होता है, सीखने की क्रिया। जीवनपर्यंत यह चलती है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' का बहुश्रुत मंत्र है, 'चरैवेति, चरैवेति'। चलते रहें। सदा आगे बढ़ते रहें। पानी एक ही जगह पड़ा रहता है, तो सड़ांध मारने लगता है। जो सभ्यताएँ चलती रहीं, उनका विकास हुआ, जो थम गईं उनका विकास भी वहीं रुक गया। बुद्ध ने भी इसीलिए कहा, 'चरत भिक्खवे, चरत'। भिक्षुओ, चलते रहो। चलते रहो। चलना जीवन है, थमना मृत्यु। इसलिए ज्ञान का कहीं कोई अंत नहीं है।

हमारे यहाँ इसीलिए शिक्षा कभी जीविकोपार्जन का माध्यम नहीं रही। शिक्षा को जीविकोपार्जन का माध्यम बताने का कार्य ब्रिटिश शासन की देन रहा है। उन्होंने ग्रंथ नहीं, पाठ रटकर परीक्षा में उत्तीर्ण होने की व्यवस्था स्थापित की। इसी से ग्रंथ की गुरु-संस्कृति से हम विमुख हुए। ब्रिटिश सरकार ने एक ही भाषा, अंग्रेजी पर जोर दिया। हमारे यहाँ तो भाषा को भी गुरु कहने की संस्कृति रही है। बच्चे की सबसे पहली गुरु उसकी माता होती है। इसीलिए भाषा को माता की संज्ञा दी गई है। इसी में वह तुतलाता है। मातृभाषा में जितना, जिस तरह से वह सीखता है, उतना किसी और भाषा में नहीं। इसीलिए हमारे यहाँ कोई एक भाषा नहीं, भाषाएँ, बोलियाँ महत्वपूर्ण रही हैं।

गौतम बुद्ध ने अपने संदेश आम लोगों तक पहुँचाने के लिए जनता की भाषा पालि को चुना। संस्कृत की बजाय स्थानीय बोलियों का उपयोग किया, ताकि उनकी शिक्षाएँ हर कोई समझ सके। बौद्ध धर्म के प्रामाणिक त्रिपिटक ग्रंथ भी पालि में ही रचे गए। इसी से बौद्धकालीन शिक्षाओं का प्रसार बड़े पैमाने पर हुआ।

भाषा व्यापक जन समुदाय की सामूहिक स्मृति का कोश होती है। अंग्रेज हमारे यहाँ आए तो राज-काज की भाषा फारसी सीखी। पर जल्द उन्होंने दीर्घ समय तक राज करने के लिए अंग्रेजी हम पर थोप दी। किसी देश को हड़पना हो तो उसकी भाषा पर आधिपत्य सबसे बड़ा माध्यम है। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी का प्रसार किया। भारत को गुलाम बनाने के साथ उसकी भाषा का दमन। दमन करने का अर्थ था, हमारी संस्कृति और इतिहास के गौरव से हमें वंचित कर देना। हमारे गुरु भाव से हमें दूर कर देना। हमने अंग्रेजी को अपना लिया, भाषा के गुरुत्व भाव से मुक्त हो गए। हमारी अपनी भाषा पर श्रद्धा नहीं रही। इसी से शिक्षा की संस्कृति भी धीरे-धीरे लोप होने लगी।

शिक्षा का अर्थ जब सीखना कहा जाता है, तो इसमें यह भाव भी जुड़ा है कि वह सिखाने के साथ-साथ 'स्व' का बोध कराए। अपने आपको जानने के लिए हमें उकसाए। यदि ऐसा नहीं है तो उस शिक्षा की कोई सार्थकता नहीं है। हम क्या हैं, क्या थे और क्या हो जाएँगे, यह सब शिक्षा का हेतु है। शिक्षा 'स्व' को निखारने की कुँजी है। यदि ऐसा नहीं है, तो उसकी कोई सार्थकता नहीं है।

'शिक्षा और श्रद्धा' परस्पर घुले हुए हैं। सीखने के प्रति श्रद्धा होगी तभी ज्ञान फलेगा। भगवद्गीता का तो उद्घोष है, 'श्रद्धावान लभते ज्ञानम्'। ज्ञान का लाभ उसी को मिलता है, जो श्रद्धा रखता है। भगवान राम की अपने गुरु ऋषि विश्वामित्र पर श्रद्धा थी, वह महान धनुर्धर हुए। शास्त्र और शस्त्र में पारंगत हुए। भगवान श्रीकृष्ण के गुरु आचार्य सांदीपनि थे। उनसे ही श्रीकृष्ण को 64 कलाओं की शिक्षा मिली। कहते हैं, उन्होंने अपने गुरु से 64 दिनों में ये कलाएँ सीखी थीं। आचार्य चाणक्य के प्रति श्रद्धा ने ही चंद्रगुप्त मौर्य को सम्राट बनाया। द्रोणाचार्य ने अर्जुन जैसे महान धनुर्धर को गढ़ा। पर गुरु की मूर्ति को ही ग्रंथ मान उनसे सीखने का कार्य किया एकलव्य ने। यह एकलव्य की गुरु के प्रति श्रद्धा ही थी कि उनके प्रत्यक्ष सान्निध्य के अभाव में उनकी मूर्ति को सर्वस्व मानकर अभ्यास करके धनुर्विद्या में एकलव्य ने असाधारण निपुणता प्राप्त की। श्रद्धा का इससे बड़ा और उदाहरण क्या होगा! एकलव्य ने ध्यान के ज्ञान से अपने को गुना। ग्रंथ नहीं पढ़े, परंतु श्रद्धा भाव से गुरु में ध्यान लगाया। गुरु द्रोणाचार्य ने दक्षिणा में उसके दक्ष होने से जुड़े दाएँ हाथ का अँगूठा ही माँग लिया। अँगूठा दक्षता की निशानी है। 'दक्ष' होने का अर्थ है, कुशल होना। ग्रंथ पढ़ेंगे तो पता चलेगा, दक्ष का जन्म दाएँ हाथ से हुआ। इसीलिए हमारे यहाँ किसी कौशल से कोई जुड़ जाता है, तो दक्ष हुआ माना जाता है। शब्द भी गुरु हैं। उनसे ही ग्रंथ उपजते हैं। पढ़ने मात्र से अपने आपको नहीं गढ़ पाएँगे, शब्दों के अर्थ की तलाश करेंगे, जीवनपर्यंत सीखने का भाव बनाए रखेंगे तभी उजास पाएँगे।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में भारतीय ज्ञान परंपरा

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

(अपनी ज्ञानरूपी अञ्जनशलाका से जिन्होंने अज्ञानरूपी रतौंधी से बाधित मेरी दृष्टि के दोष का निवारण करते हुए मुझे देखने की शक्ति दी, उन्हीं गुरुपाद को मेरा प्रणाम।)

गुरुवंदना की इस भारतीय उक्ति से यह सिद्ध है कि ज्ञान सदा प्रकाशमय एवं अज्ञान तमोमय होता है। ज्ञानालोक वस्तु को दिखाने के कारण प्रकाशक एवं स्वयं अपने आप को दिखाने के कारण प्रकाश्य भी है। इस प्रकार ज्ञान सूर्यरश्मि के समान सभी के लिए समान एवं एकरूप होता है एवं वस्तु तथा व्यक्ति निरपेक्षता के साथ अज्ञान अंधकार के अपसारण में समर्थ होता है। 'भा'-'रत' 'भा'—दीप्ति—आभा—प्रकाश में 'रत'—निरंतर संलग्न 'भारत' देश के ज्ञान का यही सार्वभौम स्वरूप है, और यह गंगोत्री में मूल उत्स से युक्त भागीरथी गंगा के समान नित्य प्रवाहमय है। साथ ही, वह उस ज्ञान का नित्य उपासक है, जो पूरे विश्व के उभय स्थावर एवं जंगम के कल्याणकर जीवन तथा समृद्धिमय विकास के लिए उद्दिष्ट हो। यह भारतीय ज्ञान सृष्टि के आदिकाल से है, अतः अत्यंत पुरातन होने के कारण और उसका आदि उत्स अपरिज्ञात होने के कारण एक प्रकार से 'अनादि' एवं 'सनातन' पदवाच्य है। साथ ही, उस समय से निरंतर प्रवाहयुक्त होने से उसकी 'परम् परम्' (उसके बाद, उसके बाद) गतिशीलता के कारण उसकी 'परंपरा' अपनी विविधता एवं विशालता के साथ दृष्टिगोचर होती है। यह उस प्रकार गंगा की धारा के समान है, जैसे गंगोत्री में अपने उत्स से आविर्भूत 'गंगा' एवं काशी में प्रवाहित 'गंगा' में जहाँ उसका सातत्य प्रमाणित है, वहाँ उसके प्रवाह में अब तक अलकनंदा, गण्डकी, यमुना आदि छोटी-बड़ी अनेक धाराएँ सम्मिलित हो चुकी होती हैं। तथापि, यह 'गंगा' नाम से अभिहित होती है, जिसे हम उसकी प्रवाहनित्यता कहते हैं। उसी प्रकार, भारतीय ज्ञान के सबसे प्राचीन मूल उत्स, वेदों से लेकर वेदांग, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, अनेकविध शास्त्र, काव्य, बौद्ध, जैन, सिख आदि नानाविध धर्म तथा समुदायगत ग्रंथ एवं आधुनिक काल में विविध भारतीय भाषाओं में रचित पुस्तकों में वह भारतीय ज्ञान परंपरा अपनी प्रवाहमयता के साथ विद्यमान है।

गोपबन्धु मिश्रा

जन्म : 1959, बिरुडा, नयागड, ओड़िशा

शिक्षा : संस्कृत विषय से पी-एच.डी. और डी. लिट.

प्रकाशन : 'अकथितं किञ्चित्' संस्कृत उपन्यास, 'शेष कथन' (हिंदी अनुवाद); 'पुरस्तात् पारिस' संस्कृत यात्राकथा, 'पारावार के पार' (हिंदी अनुवाद) सहित आठ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। साथ ही, 11 पुस्तकों का संपादन।

सम्मान : पेरिस 'हीरायामा सम्मान' (2015); साहित्य अकादेमी 'अनुवाद पुरस्कार' (2022) सहित अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित

शैक्षिक यात्राएँ : सोर्बोन नोवेल यूनिवर्सिटी, फ्रांस; लीपजिग यूनिवर्सिटी तथा हाइडलबर्ग यूनिवर्सिटी, जर्मनी

संप्रति : बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त होकर, स्वतंत्र लेखन

संपर्क : मोबाइल— 9450870788

भारतीय ज्ञान के कतिपय वैशिष्ट्य

निरंतर विकासशील मानव-जीवन के तीन आयाम होते हैं—1. दर्शन, 2. ज्ञान, एवं 3. विज्ञान। यह एक त्रिकोण है, जिसमें प्रथम आधारभूत अपना जीवन-दर्शन, अथवा संपूर्ण जीवन के संदर्भ में अपनी अवधारणा या दृष्टि होती है। दूसरा उस जीवन-दर्शन के अनुसार ज्ञान और तीसरा उसकी नाना रूपों में अभिव्यक्ति 'विज्ञान' अर्थात् उस ज्ञान के अनुरूप जीवन में प्रयोग, जिससे मूल आधारभूत जीवन-दर्शन की संपुष्टि होती रहे और इस प्रकार एक त्रिकोण पूर्ण रूप से जीवन से जुड़ा रहे।

उपर्युक्त त्रिविध आयामों के अनुसार देखा जाए तो भारतीय जीवन-दर्शन अपनी मनीषा के आदि काल से ही सार्वभौम ही रहा है, जिसमें सर्वप्रथम 'एकत्व' की दृष्टि आती है। आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक—इस त्रिविध जीवन की गति एवं उसके साथ उक्त तीन प्रकार के संतापों (अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकंप आदि 'आधिदैविक'; व्याघ्र, सर्पादि के कारण होने वाले 'आधिभौतिक'; एवं ज्वर, रोग आदि शारीरिक व्याधि एवं दुःख, मनस्ताप आदि मानसिक आधि के दूसरे नाम 'आध्यात्मिक'—ये त्रिविध ताप हैं) से निवृत्ति सभी को हो—यह मौलिक चिंतन रहा है।

साथ ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—ये चतुर्विध पुरुषार्थ सभी मनुष्यों के लिए इसी क्रम से अपेक्षित है—यह भी दृष्टि यहाँ की मौलिक ही है।

मनुष्य जीवन को एक 'आश्रम' की आख्या देकर उसे 'ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास रूप में चार प्रकार मानना एवं प्रत्येक आश्रम के लिए, उपर्युक्त मार्ग निर्देश करना, जिससे आश्रम संतुलित रीति से दूसरे के लिए अनुपूरक बना रहे—यह बोध रखना।

उक्त चतुर्विध आश्रमों के उत्तमोत्तम उपयोग के लिए अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनंदमय—इन पञ्चकोशीय सिद्धांतों की स्वीकार्यता एवं तदाधारित जीवनचर्या भी जीवन-दर्शन रही है। उपर्युक्त भारतीय जीवन-दर्शन के कतिपय मौलिक आयामों के अनुरूप ही ज्ञानधाराएँ विकसित हुईं, जो आहरण के लिए 'ज्ञान' पदवाच्य एवं प्रयोग के लिए 'विज्ञान' के रूप में देखे जा सकते हैं। इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा है—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्षाम्यशेषतः।
यज् ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज् ज्ञातव्यमवशिष्यते।। *(गीता 6/2)*

(मैं तुम्हें इस विज्ञान सहित तत्वज्ञान को कहूँगा, जिसे जानकर संसार में पुनः और कुछ जानने योग्य शेष नहीं रह जाता)। और इस प्रकार, हमारे भारतीय जीवन-दर्शन पर आधारित ज्ञान परंपरा को अभिव्यक्त करने वाले अपने प्राचीन ग्रंथों में पर्यावरणीय चेतना, कर्मसिद्धांत, संतुलित रहकर विकसित होने वाली जीवनचर्या जैसे वैज्ञानिक तथ्य पूर्णतया अनुस्यूत हैं। यहाँ उस प्रकार के विशाल एवं विविध ग्रंथों में से कतिपय विशिष्ट ग्रंथों के विषय में विमर्श करना अभीष्ट है।

वेद—ऋक्, यजुष, साम एवं अथर्व—इस प्रकार चार नामों से अभिहित वेद भारतीय संस्कृति के प्रथम उन्मेष के रूप में सर्वविदित हैं। वेद भारतीय धर्म के उत्स हैं—वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (मनुस्मृति, 2.6), ये वेद सभी ज्ञानों के अक्षय कोश। सर्वज्ञानमयो हि सः (मनुस्मृति, 2.6)। वेदों को भारतीय साहित्य का आधार माना जाता है—अर्थात् परवर्ती काव्य एवं शास्त्रों में विकसित प्रायः समस्त विषयों का स्रोत वेद ही है। काव्य, दर्शन, धर्मशास्त्र, व्याकरण आदि सभी क्षेत्रों पर वेदों की गहरी छाप है। भारतीय जीवन-दर्शन की अद्यतन धारा का संबंध किसी-न-किसी रूप में वैदिक संस्कृति से जुड़ा है। यज्ञों में विश्वास, विविध पदार्थों में देवबुद्धि, भौतिकवाद में अनास्था, मोक्ष के प्रति लक्ष्यबुद्धि आदि के स्रोत वेदों में ही हैं। वैदिक देववाद में यह विशिष्टता रही कि यज्ञविधि में प्रकृति के विविध उपादानों में अधिष्ठाता के रूप में देवताओं की कल्पना होने के कारण अनेक देवताओं की स्तुति एवं तत्तदुद्दिष्ट आहुतियों का प्रचलन होने पर भी एकतत्ववाद विकसित था—एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋग्वेद, 1.164.46)। आगे चलकर उपनिषदों में यह एकत्व का अनुचिंतन बलवत्तर हुआ, जैसे—'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्' (ईशोपनिषद् 1) 'संपूर्ण जगत् एक परमेश्वर के द्वारा ही व्याप्त है।'

ऋग्वेद के प्रथम तथा दशम मंडलों में ऋषियों की दार्शनिक उद्भावनाएँ संकलित हैं, जिनमें अस्यवामीय सूक्त (1.164), पुरुषसूक्त (10.90), नासदीयसूक्त (10.129) हिरण्यगर्भसूक्त (10.121) आदि प्रमुख हैं। अस्यवामीय सूक्त में विश्व के उद्भव, विकास और विलय की समस्त दार्शनिक ऊहाएँ हैं। उसमें एक मंत्र का अर्थ यह है— दो सुपर्ण (उत्तम चेतनाशक्ति से युक्त) सदा साथ रहने वाले मित्र पक्षी प्रकृतिरूप वृक्ष पर अवस्थित हैं। उन दोनों में एक जीव तो उस प्रकृति के सुख-दुःखात्मक फलों का भोग करता है, परंतु दूसरा परमात्मा प्रकृति से निर्लिप्त होकर केवल प्रकाशित रहता है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।। (20)

इतना ही नहीं, पारिवारिक जीवन में संयुक्त परिवार की प्रथा का महत्व, माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पौत्र आदि सभी संबंधियों का वैशिष्ट्य ऋग्वेद में अङ्कित है। लोक में व्यवहार, दिनचर्या और ऋतुचर्या (देश और काल के अनुसार आचरण)—इन तीन महत्वपूर्ण विषयों की चर्चा है। विद्याध्ययन और उसके लिए उपनयन, गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए विवाह जैसे मुख्य संस्कारों का वर्णन है। सामवेद संपूर्ण संगीत-शास्त्र, षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद—ये सात स्वर, मंद, मध्य और तीव्र—ये तीन ग्राम आदि पूरे नृत्य, गीत, वाद्य संवलित उत्तरकालिक नाट्यशास्त्र—इन सभी का उत्स सामवेद है। अर्थववेद में भैषज्य, आयुष्य, राजकर्म आदि का विशद ज्ञान निहित हैं।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (पृथिवीसूक्त, 12.1.12) की इस पंक्ति एवं अथर्ववेद के संपूर्ण पृथिवीसूक्त में मातृभूमि माता एवं उसमें जन्मे हम उनके पुत्र हैं और मातृभूमि की सेवा हमारा परम धर्म—इस प्रकार उन्नत चिंतन संपूर्ण वसुधा के लिए है। इसमें इस पृथ्वी के सारे शत्रु (प्रतिकूलता) का नाश हो—ऐसी प्रार्थना है—

'सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नान्' (पृथिवीसूक्त, 12.1.41)

वैदिक ज्ञान की रक्षा हेतु वेदाङ्ग

उपर्युक्त वैदिक ज्ञान की सर्वविध सुरक्षा के निमित्त वेदों के उपकारक षड् वेदाङ्गों का प्रणयन हुआ, वे हैं—शिक्षा, छंद, व्याकरण, निरुक्त, कल्प एवं ज्योतिष। वैदिक मंत्रों के सही उच्चारण के लिए शिक्षा एवं छंद, सही अर्थबोध के लिए व्याकरण एवं निरुक्त तथा सही रीति से याज्ञिक प्रयोग के लिए कल्प एवं ज्योतिष शास्त्र उद्दिष्ट हुए।

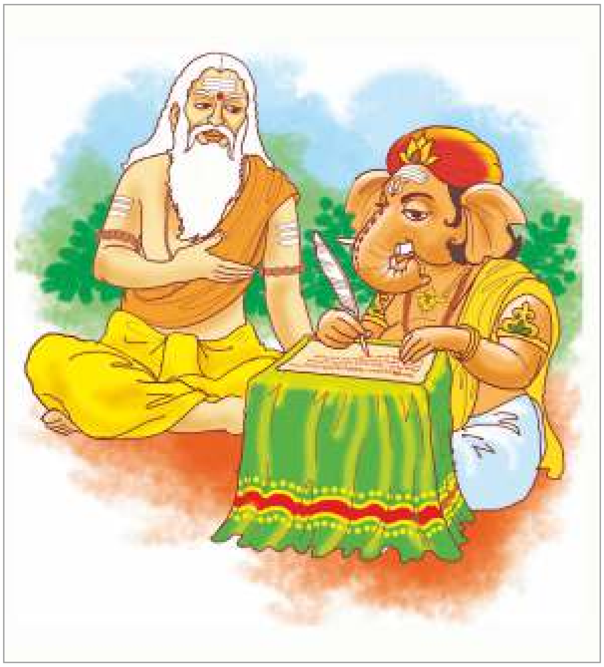

वैदिक ज्ञान के संवर्धक ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्

वैदिक मंत्रों के उपयोगों की व्याख्या के लिए प्रत्येक वेद के 'ब्राह्मण' ग्रंथों का प्रणयन हुआ। ब्राह्मण ग्रंथों के परिशिष्ट रूप आरण्यकों एवं उपनिषदों का विकास प्रत्येक वैदिक शाखा में हुआ।

सामान्य दृष्टि से वैदिक ज्ञान के प्रयोगात्मक कर्मकांड के अंतिम भाग के रूप में 'वेदांत' अर्थात् वेदों के सारभूत दार्शनिक सिद्धांत के रूप में उपनिषदों की रचना भारतीय मनीषा की उदात्तता की चरम उदाहृति है, जिसे हम वैदिक ज्ञानकांड का उत्कर्ष कह सकते हैं। आदि शंकराचार्य के अनुसार बार-बार जन्म-मरण के चक्र के कारण सभी अनर्थों को उत्पन्न करने वाले संसार का यह (उपनिषद्) विनाश करती है, अविद्या को शिथिल करती हुई ब्रह्म की प्राप्ति (अगवति ज्ञान) कराती है।

उपनिषादयति सर्वानर्थकरं संसारं विनाशयति,
संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति, ब्रह्म च गमयति।

(ईशावास्योपनिषद्, शांकरभाष्य)

उपनिषदों में संसार की सर्वोच्च सत्ता ब्रह्म है—सर्वं खल्विदं ब्रह्म। (छान्दोग्य 3.14.1), नित्य, विभु, सर्वज्ञ इत्यादि रूप में 'सगुण' ब्रह्म के होने पर भी सच्चिदानन्द, मन और वाणी से अगोचर निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म 'परब्रह्म' का अक्षर, अजर, अमर रूप यहाँ वर्णित है। ईशावास्योपनिषद् में त्यागपूर्वक भोग (तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः), कर्म की अवश्यकर्तव्यता (कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं सभाः), नाना शास्त्र एवं कर्म रूपी अविद्या से प्राणों की रक्षा करके विद्या से ही अमरत्व की कामना करना (अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते) आदि उदात्त ज्ञान निहित हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में 'सत्यं वद, धर्मं चर' आदि आचार्य का उपदेश आज भी हमारे प्रत्येक स्नातक के लिए दीक्षांत मंत्र के रूप में व्यवहृत होता है। इसी उपनिषद् में अन्नमय, प्राणमय आदि पञ्च कोशों का स्वरूप एवं महत्व वर्णित है—अन्नं न निन्द्यात्, तद् व्रतम्—भृगुवल्ली। इसमें कथित है कठोपनिषद् में यम एवं नचिकेता के संवाद के माध्यम से नित्यानित्यवस्तु—विवेक की, श्रेयः एवं प्रेयः में से श्रेयः को चुनने की अपेक्षा दर्शायी गई है। बृहदारण्यकोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य की अपनी तत्वज्ञान गरीयसी पत्नी मैत्रेयी के साथ वैदुष्यपूर्ण संवाद निहित है।

रामायण एवं महाभारत

वैदिक ज्ञान के विस्तार के रूप में लौकिक जगत् में जिन दो महान् ग्रंथों का उदय हुआ, उनसे उत्तरकाल के भारतीय साहित्य एवं ज्ञानविज्ञानसंबद्ध शास्त्र प्रभावित एवं विकसित हुए। ये दो ग्रंथ हैं—आदिकाव्य के रूप में प्रसिद्ध महर्षि वाल्मीकि विरचित 'रामायण' एवं इतिहास काव्य महर्षि वेदव्यास विरचित 'महाभारत'।

सात काण्डों में विभक्त रामायण में पितृभक्ति, स्वामिभक्ति, प्रजावत्सलता, भ्रातृस्नेह आदि मानवीय गुण, सत्य, धर्म, सदाचार, कर्तव्यनिष्ठा आदि सामान्य गुण, अन्याय पर न्याय की विजय, भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम राम के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और चारित्रिक गुणों के आदर्श रूप के कारण यह भारत के न केवल संस्कृत काव्य एवं शास्त्रों के लिए, अपितु प्रत्येक भाषा में उत्तरकालिक अनेकविध रचनाओं के लिए श्रेष्ठ उपजीव्य ग्रंथ है। रावण की मृत्यु के बाद भगवान् राम का विभीषण को उपदेश देना उनकी उदात्त एवं सत्य दृष्टि का एक उज्ज्वल उदाहरण है—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नरू प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।। *(रामायण, 6.111.100)*

(शत्रुता शत्रु की मृत्यु तक ही होती है, अब मृत रावण का संस्कार करना अपेक्षित है। मृत पिण्ड से क्या शत्रुता, अब यह मेरे लिए और तुम्हारे लिए एक समान है—केवल पिण्डमात्र, न शत्रु, न भ्राता।)

शतसाहस्री (एक लाख) संहिता के रूप में प्रसिद्ध अष्टादश पर्व में विभक्त महाभारत भारत के सांस्कृतिक विषयों का विराट् कोश एवं आचार की संहिता है। महाभारत के विषय में प्रसिद्ध उक्ति है कि जो महाभारत में नहीं है, वह भारत में नहीं है (यन्न भारते तन्न भारते)।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।

(*महाभारत, 1.62.43*)

मूलतः कौरव एवं पांडवों के परस्पर संबद्ध, संग्राम एवं परिणाम से संबद्ध महाभारत आख्यानों, उपाख्यानों, चरित्रों का महासमुद्र है। इसमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों का वर्णन है—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

(*महाभारत, 1.62.53*)

विश्वप्रसिद्ध 700 श्लोकों में तथा अठारह सर्गों में निहित श्रीकृष्णार्जुनसंवाद रूपी श्रीमद्भगवद्गीता इसी महाभारत के 'भीष्मपर्व' में है। इसमें सांख्य, कर्म, ज्ञान एवं राजयोग तथा संपूर्ण मानव-सभ्यता की इतिकर्तव्यता की अनूठी संगति है।

पुराणसाहित्य

इतिहास एवं पुराणों के द्वारा वैदिक ज्ञान संवर्धित हुआ (इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत)। मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत आदि अठारह महापुराण एवं सनतकुमार, नारसिंह आदि अठारह उपपुराणों में विश्व की सृष्टि की प्रक्रिया, प्रलय तथा पुनः सृष्टि का वर्णन, देवताओं और मुनियों के वंशों का वर्णन, प्रत्येक मनु के काल का वर्णन तथा सूर्यवंश एवं चंद्रवंश में उत्पन्न राजाओं का जीवनचरित वर्णित हैं।

पुराणों में वर्णित भौगोलिक वर्णन से उन्हें 'भुवनकोश' की आख्या दी जाती है। इनमें भारत की एकता का सफल प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त, कतिपय पुराणों में नीति, दर्शन, धर्मशास्त्र, काव्यशास्त्र, वास्तुविद्या, आयुर्वेद, व्याकरण, ज्योतिष, स्मृतिशास्त्र आदि का प्रतिपादन किया गया है।

महाकाव्य एवं नाटक

वाल्मीकि रामायण के पश्चात् काव्यकला में भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रवाह की उपलब्धि हेतु शताब्दियाँ लगीं। प्रथम शतक ई.पू. में कविकुलगुरु कालिदास के रघुवंश, कुमारसम्भव एवं मेघदूत में भारतीय संस्कृति, वैदिक परंपरा, नित्यानित्यविवेक, सामाजिक न्याय, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि मानवीय गुणों का विविध वस्तु, नेता एवं रस के माध्यम से विस्तार प्राप्त है। इसी प्रकार, प्रथम शतक में महाकवि अश्वघोष का बुद्धचरित, सौन्दरानन्द, महाकवि भारवि का किरातार्जुनीय, माघ का शिशुपालवध, श्रीहर्ष का नैषधीयचरित आदि में राजनीतिशास्त्र, नैतिकता, त्याग तथा तपःपूत जीवनशैली की विशिष्टता आदि वर्णित है।

नाटकों में महाकवि भास के प्रतिमानाटक, स्वप्नवासवदत्त, महाकवि कालिदास के अभिज्ञाशाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय आदि में नानाविध पात्रों एवं घटनाओं के माध्यम से उदात्त चरित्र, आश्रमधर्म, गृहस्थ धर्म, राजा आदि की नैतिकता जैसी भारतीय मनीषा वर्णित है।

इनके अतिरिक्त, संस्कृत गीतिकाव्य, गद्यकाव्य आदि की एक सुदीर्घ परंपरा भी है।

शास्त्रों में आयुर्वेद की चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, वाग्भट्ट के अष्टाङ्गहृदय एवं अष्टाङ्गसंग्रह प्रसिद्ध हैं। वात्स्यायन का कामसूत्र, अमरकोश आदि कोश ग्रंथ, पाणिनि आदि आचार्य का व्याकरणशास्त्र, वेदाङ्गज्योतिष सूर्यसिद्धान्त जैसे ज्योतिषशास्त्र, मनु, याज्ञवल्क्य आदि के स्मृतिग्रंथ, कौटिल्य का अर्थशास्त्र आदि प्रसिद्ध है।

अन्य भाषाओं में रचित ग्रंथ

उपजीव्य काव्य रामायण एवं महाभारत की कथावस्तु एवं पात्रों पर आधारित विविध भाषाओं में रचित वाङ्मय में भारतीय ज्ञान की परंपरा निरंतर प्रवाहित होती रही। उनमें संतकवि तुलसीदास का अवधि भाषा में रचित 'रामचरितमानस', बंग भाषा में 'कृत्तिवास का रामायण', ओड़िया भाषा में 'कवि सारलादास का महाभारत', संत ज्ञानेश्वर का मराठी में 'गीता की टीका' आदि सुप्रसिद्ध हैं।

इन अनंत रचनाओं में अंतःसलिला फल्गु नदी के गर्भ में विद्यमान एवं सामान्य प्रयास से उपलभ्यमान जल के समान पूर्ण भारतवर्ष में उपरिकथित भारतीय ज्ञान के तत्व निहित हैं, जिनसे संपूर्ण वसुधा को एक कुटुम्ब मानने की अन्तःप्रेरणा (वसुधैव कुटुम्बकम्), सभी के सुख, निरामयत्व, उन्नतचिन्तन हेतु आत्मनिवेदन—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

साथ-साथ रहने एवं सभी पदार्थों का साथ-साथ मिलकर उपयोग करना जैसी उदात्त कल्पना (सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु) अनुस्यूत है।

इन्हीं कारणों से विश्व में व्याप्त ज्ञान-निधान में भारतीय ज्ञान का यह महासमुद्र रत्नाकर के समान अपनी अद्वितीयता एवं विलक्षणता के कारण संपूर्ण विश्व के लिए गौरवपूर्ण है। हमें इस ज्ञान परंपरा का वैज्ञानिक अर्थात् साक्षात् उपयोग कर भारत के जीवन-दर्शन का संपोषण करना चाहिए, जिससे यह त्रिकोण पूर्णता को प्राप्त कर सके।

भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान

'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः' जैसे ऋग्वैदिक सूत्र वाक्य से आप्लावित भारतीय ज्ञान पिपासा ज्ञान मीमांसीय रत्नाकर के रूप में उस समय आप्लावित हुई, जिस समय पश्चिम विवेकहीन अंधकूप में निमग्न था। निश्चित रूप से भारतीय ज्ञान परंपरा का दृष्टिकोण प्रारंभ से ही समग्र और समृद्ध रहा है।

ज्ञान का उद्देश्य केवल भौतिक दुनिया को समझना नहीं, बल्कि स्वयं को, ब्रह्मांड को और अपने अस्तित्व के अर्थ को जानना भी है। यहाँ ज्ञान को जीवन से अलग नहीं देखा जाता, बल्कि इसे आत्म-साक्षात्कार और मुक्ति का मार्ग माना जाता है।

"सा विद्या या विमुक्तये"

(विष्णु पुराण, अध्याय 1.19.41)

डॉ. मनोरमा मिश्रा

जन्म : प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : एम.ए., पी-एच. डी.

प्रकाशन : 'अवध : संस्कार लोकाचार एवं लोकमंगल' तथा 'संस्कृति के आयाम' शीर्षक दो पुस्तकें राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित। इसके साथ ही, अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में बीस से अधिक शोधालेख भी प्रकाशित। इसके अतिरिक्त, अनेक साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं में सक्रिय भागीदारी।

संप्रति : सत्यवती कॉलेज (सांध्य) में सहायक प्राध्यापक के पद पर कार्यरत

संपर्क : मोबाइल– 9717008314

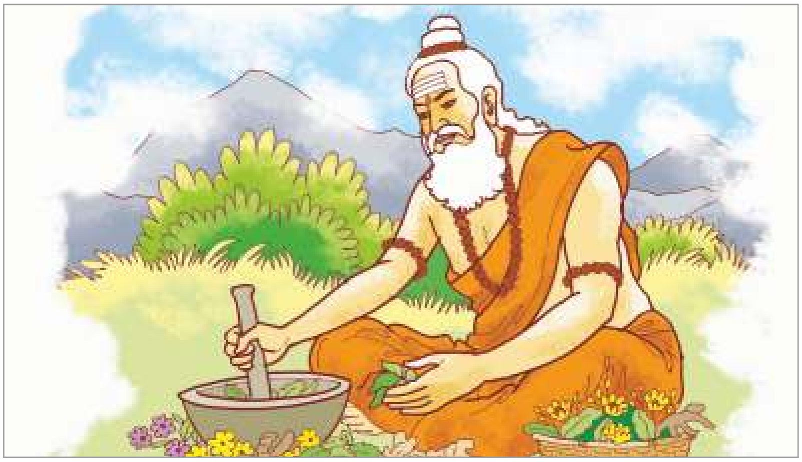

अर्थात् वह विद्या, जो बंधनों से मुक्त करे, वही सच्ची विद्या है। यह श्लोक ज्ञान को केवल सूचनात्मक ही नहीं, बल्कि मुक्तिदायक और विवेकपूर्ण मानता है, जो वैज्ञानिक सोच का मूल है। यह दृष्टिकोण वर्तमान समय के आधुनिक विज्ञान की पद्धति प्रेक्षण-परिकल्पना-प्रयोग-प्रमाणीकरण का प्रारूप है।

भारतीय चिंतन में विज्ञान को 'विज्ञानं यथार्थज्ञानम्' कहा गया है–अर्थात् सत्य का अनुभवजन्य और तर्कसंगत ज्ञान। भारतीय ज्ञान परंपरा का विविध क्षेत्रों, जैसे–दर्शन, धर्म, विज्ञान, खगोल शास्त्र, चिकित्सा, कृषि, वास्तु शास्त्र और पर्यायवरण संतुलन को गूँथने में गहन और मौलिक योगदान रहा है । यह ज्ञान परंपरा वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तर्क, अनुभव, पर्यवेक्षण एवं प्रयोग पर आधारित थी, जो कि वर्तमान समय की आधुनिक पद्धतियों से न केवल मेल खाती है, बल्कि और भी अधिक उन्नत और समग्र थी। उदाहरण के लिए, ज्योतिष और गणित को धर्मग्रंथों में स्थान मिला है और आयुर्वेद का आधार भी दार्शनिक सिद्धांतों पर टिका है।

भारतीय दर्शन शास्त्र में ज्ञान प्राप्त करने के कई साधन माने गए हैं, जिन्हें प्रमाण कहा जाता है। इन प्रमाणों की अत्यधिक महत्ता है, जैसे–न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द को मान्यता दी गई है, वहीं दूसरी ओर मीमांसा और वेदांत दर्शनों में इन प्रमाणों के साथ-साथ अर्थापत्ति और अनुपलब्धि को भी जोड़ा गया है। जबकि अधिकांशतः दर्शन में शब्द का महत्व विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि यह मानता है कि ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक या लिखित परंपरा के माध्यम से स्थानांतरित होता है। गुरु-शिष्य परंपरा इसी पर आधारित है। भारतीय ज्ञान परंपरा भारत की प्राचीन और निरंतर चलने वाली बौद्धिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत है, जिसमें वेद, उपनिषद्, पुराण, दर्शनशास्त्र, गणित, आयुर्वेद, कला और साहित्य शामिल हैं, जो जीवन के समग्र विकास पर केंद्रित है।

यह परंपरा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक पहलुओं को एकीकृत करती है और आधुनिक युग की समस्याओं, जैसे भौतिकवाद, मानसिक तनाव व पर्यावरण संकट का समाधान प्रदान करती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा अपने समग्र दृष्टिकोण, निरंतरता, सार्वकालिक दर्शन, विविधता, वेद-उपनिषद्, कला, साहित्य एवं विज्ञान के कारण विश्व में अपना परचम फहरा रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा में वैज्ञानिकता का सार अत्यंत गहन, समग्र और जीवनोपयोगी है। यहाँ विज्ञान को प्रकृति और जीवन के साथ जोड़कर देखा गया। यहाँ ज्ञान का उद्देश्य केवल भौतिक सुख-सुविधाओं को बढ़ाना नहीं था, बल्कि जीवन के रहस्यों को समझना और प्रकृति के साथ संतुलन बनाना था। इसलिए, भारतीय विज्ञान में केवल तर्क और प्रयोग ही नहीं, बल्कि सूक्ष्म अवलोकन और प्रकृति के साथ सामंजस्य पर भी जोर दिया गया।

भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान (बौद्धिक, अध्यात्मिक समझ) और विज्ञान (अनुभवजन्य, तर्कसंगत विश्लेषण) को कभी एक-दूसरे से पृथक नहीं माना गया है, अपितु ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान को प्रयोगशाला तक ही सीमित नहीं रखा गया, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में व्यावहारिक रूप में अपनाया गया है। ज्ञान और विज्ञान के इस समन्वय को वेदों और उपनिषदों में श्लोकों एवं मंत्रों के रूप में वर्णित किया गया है।

"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय"।

(बृहदारण्यक उपनिषद्, अध्याय 1.3.28)

उपरोक्त मंत्र में असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने की प्रार्थना की गई है, जो कि इस मंत्र का आध्यात्मिक विश्लेषण है। वहीं दूसरी ओर, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो इस मंत्र के उच्चारण से मस्तिष्क की तर्कशीलता, निर्णय-क्षमता, मानसिक स्पष्टता, भावात्मक स्थिरता, संतुलित जीवन-शैली और दीर्घायु की बात कही गई है। तंत्रिका विज्ञान का चिकित्सा अनुसंधान भी इस बात की पुष्टि करता है कि उपरोक्त मंत्र के उच्चारण से डोपामिन और सेरोटोनिन न्यूरोकेमिकल का स्राव होता है, जो कि न्यूरोबायोलॉजिकल संतुलन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान के विविध स्रोत केवल आध्यात्मिक और भौतिक मार्गदर्शन का स्रोत नहीं है, बल्कि वह वैज्ञानिक सोच, तार्किक विश्लेषण और गहन चिंतन पर केंद्रित रहे हैं। वेदों से लेकर उपनिषदों तक हर अवधारणा का विकास न्याययुक्त विचार, तार्किक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से हुआ है। आज की वैज्ञानिक पद्धतियाँ—अवलोकन, परीक्षण और निष्कर्ष भी इसी से मेल खाती हैं। अंततः यह कहा जा सकता है कि इस समय का वर्तमान विज्ञान भारतीय ज्ञान परंपरा के इन्हीं स्तंभों पर टिका है, जरूरत है इस परंपरा का पुनः अन्वेषण करने, समाज के लोगों को इसी वैज्ञानिकता से पुनः परिचित कराने की।

भारतीय ज्ञान परंपरा : भारतीय चिकित्सा प्रणाली

भारतीय ज्ञान परंपरा में चिकित्सा पद्धतियों और सिद्धांत की नींव हजारों साल पहले वैदिक काल (1500 ईसा-पूर्व से 500 ईसा-पूर्व) में ही रख दी गई थी, जब आधुनिक विज्ञान (16वीं-17वीं शताब्दी) का अस्तित्व भी नहीं था।

भारत में आयुर्वेद प्राचीनतम एवं प्रारंभिक चिकित्सा पद्धति के रूप में विकसित हुई थी, जिसे 'जीवन का विज्ञान' की उपाधि दी गई, जो मन और आत्मा के संतुलन पर आधारित थी। वहीं चरक संहिता में शारीरिक संरचना रोगों के लक्षण, कारण, निदान और उपचारों के वैज्ञानिक सिद्धांतों का वर्णन मिलता है।

'सुश्रुत संहिता' में शल्य चिकित्सा की 300 क्रियाओं और 120 से अधिक उपकरणों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो आधुनिक शल्य चिकित्सा का आधार है। नाड़ी विज्ञान, त्रिदोष सिद्धांत (वात, पित्त, कफ) की वैज्ञानिकता आज भी प्रासंगिक है। आज विश्व जिस समग्र उपचार, निवारक देखभाल और मन-शरीर चिकित्सा प्रणाली की चर्चा कर रहा है, वह भारतीय पारंपरिक ज्ञान के रूप में बहुत पहले से ही विकसित हो चुकी थी। वह आज के संदर्भ में चिकित्सा जगत में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर रही हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा : कृषि विज्ञान एवं पर्यावरण संरक्षण

कृषि विज्ञान एवं पर्यावरण संरक्षण में भारतीय ज्ञान परंपरा का अतुलनीय योगदान रहा है। हड़प्पा सभ्यता से लेकर वैदिक काल तक प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि पूजनीय तत्व माना गया। विश्व के प्राचीनतम वैदिक ग्रंथों में पृथ्वी जल, वायु, अग्नि एवं नभ को पंच महाभूत के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जिसे वर्तमान समय में पूरे विश्व ने पर्यावरण संतुलन के मूल आधार के रूप में स्वीकार किया है। हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों एवं वेदों (अथर्ववेद) में कृषि और उससे संबंधित पद्धतियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें सिंचाई एवं कीटों के भगाने के तरीकों का उल्लेख है। 'अग्नि पुराण' में विभिन्न कृषि प्रणालियाँ एवं रासायनिक उर्वरकों के बारे में जानकारी मिलती है, जो कि वर्तमान समय के सस्टेनेबल और ऑर्गेनिक खेती के प्रारंभिक सूत्रधार रहे हैं। ऋषि पराशर द्वारा रचित ग्रंथ 'कृषि पराशर' वह प्राचीन वैज्ञानिक दस्तावेज है, जो भारतीय पारंपरिक कृषि प्रणाली, कृषि गतिविधियों के सिद्धांतों का अवलोकन करता है। आधुनिक विज्ञान विषय एग्रोनॉमी, सीड साइंस, इरिगेशन साइंस में जिन बीज, सिंचाई और अच्छी उपज प्राप्त करने के तरीकों का वर्णन है, वह आठवीं शताब्दी ईसवी से पहले ही ऋषि पराशर द्वारा लिखा जा चुका था। संस्कृत में लिखा गया यह धार्मिक ग्रंथ व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण है। आज के प्रसंग में इसे केवल एक आध्यात्मिक एवं

सांस्कृतिक ग्रंथ के रूप में नहीं लिया जा सकता, बल्कि यह एक वैज्ञानिक ग्रंथ है। संस्कृत में ही लिखा गया ग्रंथ 'वृक्षायुर्वेद', जिसमें सुरपाल ने 325 श्लोक के माध्यम से 170 से अधिक पौधों की विशेषताओं का वर्णन किया है, जिससे यह पता चलता है कि भारत में वनस्पति विज्ञान, सस्टेनेबल फार्मिंग, बायोफार्मिंग, पर्यावरण चेतना का उद्घोष हजारों वर्ष पहले ही हो चुका था।

छठी शताब्दी के महान गणितज्ञ ज्योतिषाचार्य और खगोलशास्त्री वराहमिहिर की रचना 'वृहत्संहिता' में पादप रोग विज्ञान, कंपोस्ट बनाने का विज्ञान और बागवानी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण की विवेचना की है, अर्थात् यदि हम वर्तमान विज्ञान का भारतीय कृषि परंपरा से तुलनात्मक विश्लेषण करें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक कृषि की जिन विभिन्न धाराओं के महत्व की परिचर्चा और संकलन कृषि विज्ञान एवं वैज्ञानिक करते हैं, वह धाराएँ वराहमिहिर द्वारा बहुत पहले ही बताया जा चुका था।

भारतीय ज्ञान परंपरा : गणित और ज्योतिष

भारतीय ज्ञान परंपरा में गणित एवं ज्योतिष का आदिकाल से ही अत्यंत विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान रहा है। गणित का उपयोग यहाँ केवल सांख्यिकी गणना तक ही सीमित नहीं है, अपितु इस संपूर्ण ब्रह्मांड की गणना (संरचना), समय की गणना एवं जीवन के विविध पहलुओं से जोड़ा गया है। जहाँ एक ओर 'ब्रह्मस्फुटित सिद्धांत' ग्रंथ में आर्यभट और ब्रह्म गुप्त की शून्य की अवधारणा एवं गणनाओं का उल्लेख है, वहीं दूसरी ओर, आधुनिक बीजगणित का प्रारंभिक स्वरूप ब्रह्म गुप्त और भास्कराचार्य की कृतियों 'लीलावती' और 'बीजगणित' ग्रंथ में मिलता है। त्रिकोणमिति में 'ज्या', 'कोज्या' और 'पाई' के सटीक मान का श्रेय भी इन्हीं को जाता है। दशमलव प्रणाली के विकास का केंद्र भी भारत ही रहा है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख ग्रंथों, वराहमिहिर के 'वृहत्संहिता' और 'वृहज्जातक', पराशर के 'होराशास्त्र', भट्टोत्पल, भास्कराचार्य, आर्यभट जैसे विद्वानों के उल्लेखनीय योगदान का विस्तृत वर्णन है। इन ग्रंथों में कर्म सिद्धांत, ग्रहों की चाल, राशियों का प्रभाव जन्म कुंडली एवं दशा प्रणाली का गहन विश्लेषण प्राप्त होता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा : धातु विज्ञान और वास्तु शास्त्र

भारतीय ज्ञान परंपरा में वास्तु शास्त्र और धातु विज्ञान का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रंथों में मिलता है, जो कि आधुनिक भवन-निर्माण की वैज्ञानिक प्रणाली का मार्गदर्शन करता है। दिल्ली का लौह स्तंभ इसका एक उत्कृट उदाहरण है। इसमें 99% शुद्ध लोहा है और यह 1600 से अधिक वर्षों से बिना जंग लगे खड़ा है। यह उन्नत जंग-प्रतिरोधी धातु विज्ञान के ज्ञान को दर्शाता है। इन ग्रंथों में आधुनिक काल की संधारणीयता दर्शन (सेंसेटेबिलिटी फिलॉसफी) की विवेचना की गई है। नागार्जुन द्वारा रचित धातु विज्ञान के ग्रंथ 'रस रत्नाकर' में धातुओं के निष्कर्षण और शुद्धीकरण के अंतर्गत चाँदी, सोना, टिन और ताँबे जैसी धातुओं के अयस्कों को निकालने और उन्हें शुद्ध करने की विधियों का वर्णन किया गया है। इसी ग्रंथ में पारे और उसके यौगिकों के निर्माण, आसवन, द्रवीकरण, ऊर्ध्वपातन जैसी रासायनिक प्रकियाओं का वर्णन मिलता है। नागार्जुन की प्रयोगशाला के साक्ष्य वर्तमान महाराष्ट्र में मिलते हैं।

वर्तमान समय के महान रसायनशास्त्री प्रफुल्ल चंद्र रे की पुस्तक 'द हिस्ट्री ऑफ हिंदू कैमिस्ट्री' में प्राचीन धातुओं के विज्ञान और रस शास्त्र का वर्णन है, जिसमें धातुओं के निष्कर्षण, शुद्धीकरण, मिश्र धातु को बनाने की विधि पर प्रकाश डाला गया है और जिसके माध्यम से प्राचीन भारत की वैज्ञानिक प्रगति के ज्ञान को दुनिया के सामने लाने का प्रयास किया गया है।

ठीक इसी प्रकार, वास्तु शास्त्र के क्षेत्र में 'मायामाता' ग्रंथ में नगर नियोजन, मंदिर-निर्माण और स्थापना की विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। वास्तुशास्त्र में विश्वकर्मा को देवशिल्पी का स्थान दिया गया है। राजा भोज की प्राचीन 'समरांगण सूत्रधार' में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं मूर्तिकला का सुंदर समन्वय मिलता है। 'मानसार' ग्रंथ में मंदिर-निर्माण एवं मूर्तिकला की नियमावली को विस्तृत रूप से सम्मिलित किया गया है। पौराणिक ग्रंथ 'अग्नि पुराण', 'गरुड़ पुराण' में धातुओं की उत्पत्ति, गुण एवं धार्मिक व औद्योगिक उपयोग का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में धातु एवं खनिज संबंधित उद्योगों की नीति एवं प्रबंधन का वर्णन किया गया है, जो कि वर्तमान समय की सतत खनन और उद्योगों की औद्योगिकीकरण, पर्यावरण नीति के उद्देश्य एवं लक्षणों का मार्गदर्शन करती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा प्रणाली और प्रयोगात्मक विज्ञान

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा प्रणाली वैदिक काल से ही बहुत समृद्ध थी। भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा प्रणाली एवं प्रयोगात्मक विज्ञान को केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित नहीं रखा गया था, बल्कि उसमें अनुभव, तर्क संवाद और प्रयोगात्मक विधियों को सम्मिलित किया गया है, अर्थात् प्राचीन शिक्षा प्रणाली व्यक्ति के सर्वांगीण विकास (बौद्धिक विकास, नैतिक विकास, आध्यात्मिक विकास और व्यावहारिक विकास) में केंद्रित था। शिक्षा प्रणाली के इसी वैज्ञानिक स्वरूप को ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में जोड़ा गया है। आधुनिक युग की शिक्षा पद्धतियाँ, जैसे—अनुभवात्मक शिक्षण, जिज्ञासापरक शिक्षण, सहयोगात्मक अधिगम और निर्माणवादी दृष्टिकोण भारतीय दर्शन के उन ज्ञान के प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापति एवं अनुपलब्धि) पर आधारित है, जिसकी आज के संज्ञानात्मक और ज्ञान-मीमांसा के सिद्धांत की बात करते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण इंद्रियों द्वारा अनुभव को दर्शाता है, जिसे आधुनिक साइंस में 'सेंसरी इनपुट' के रूप में जाना जाता है। अनुमान प्रमाण, तर्क और निष्कर्ष पर आधारित होता है, जो मस्तिष्क के प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स की कार्य प्रणाली से जुड़ा है। उपमान प्रमाण, समानता और तुलना से जुड़ा है, जो एनालॉजिकल एंड क्रिटिकल थिंकिंग का उदाहरण है। शब्द प्रमाण विश्वसनीय स्रोतों द्वारा प्राप्त ज्ञान को दर्शाता है, जो लिंग्विस्टिक कॉग्निशन से संबंधित है। इसी प्रकार, अर्थापति हायपोथेटिकल रिजिनिंग और अनुपलब्धि प्रमाण नेगेटिव एविडेंस से संबंधित है, जो कि शिक्षा के आधुनिक सिद्धांतों से

मेल खाता है। गुरुकुल परंपरा में शिष्य, गुरु के सान्निध्य में गुरुकुल में साहित्य ज्ञान अर्जित करते थे, जो वर्तमान समय के रेजिडेंशियल स्कूलिंग के कॉन्सेप्ट एंड वैल्यू बेस्ड एजुकेशन के प्रेरणा स्रोत हैं, यानी वैदिक काल में ही शिक्षा में इन स्कूलिंग कांसेप्ट का विकास हो चुका था, जिसकी बात आज की वैज्ञानिक शिक्षण पद्धतियाँ करती हैं। शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार उन्मुख नहीं, बल्कि छात्रों के चरित्र-निर्माण, कर्तव्य बोध, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक कल्याण की भावना को विकसित करना था। ज्ञान का उद्देश्य केवल भौतिक को समझना नहीं था, बल्कि स्वयं को, ब्रह्मांड को और अपने अस्तित्व को जानना भी था, जो आज की समग्र एवं बहुआयामी शिक्षा की अवधारणा का मूल है। भारत ज्ञान अर्जित करने का विश्व के प्राचीन एवं प्रसिद्ध केंद्रों में से एक था, जिसमें तक्षशिला अपने बहुविषयक पाठ्यक्रम के लिए जाना जाता था, जिसमें वैदिक साहित्य, आयुर्वेद, दर्शन, गणित और युद्ध कौशल जैसे विषय शामिल थे। चाणक्य और पाणिनी जैसे विद्वान तक्षशिला से जुड़े थे। इसके अलावा, काशी दर्शन और धर्मशास्त्र के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण केंद्र था और दक्षिण भारत के घटिका और अग्रहार जैसे संस्थान भी शिक्षा के केंद्र थे, जहाँ विद्वान अध्ययन और अध्यापन करते थे।

भारतीय साहित्य ज्ञान परंपरा एवं विज्ञान

वैदिक काल के भारतीय साहित्य में विज्ञान की गहरी समझ छिपी है। अथर्ववेद में औषधीय और चिकित्सा, ऋग्वेद में सूर्य की गति और जल चक्र का वर्णन मिलता है, जो कि आयुर्वेद का आधार है। गर्भ उपनिषद् आधुनिक एंब्रॉलोजी से मेल खाता है। सामवेद में ध्वनि और संगीत की संरचना पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण मिलता है। वैशेषिक दर्शन में परमाणु सिद्धांत का उल्लेख मिलता है, जो कि आधुनिक भौतिकी से मेल खाता है। महाकवि कालिदास की रचनाओं में प्रकृति, खगोल, भाषाबोध एवं दर्शन का अद्भुत समन्वय अंतर्निहित है। उदाहरण के लिए, 'मेघदूत' में वर्णित तथ्य आज के आधुनिक मौसम विज्ञान से मेल खाते हैं। 'ऋतु संहार' में उन्होंने छह ऋतुओं का वर्णन किया है, जो जलवायु विज्ञान और पारिस्थितिकी विज्ञान के सिद्धांतों को विकसित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। 'कुमारसंभव' और 'रघुवंश' जैसे महाकाव्य में आयुर्वेद और शरीर संरचना विज्ञान के वैज्ञानिक सिद्धांतों का काव्यात्मक रूप में वर्णन किया गया है। उनकी रचनाएँ केवल सौंदर्यपरक और भावात्मक नहीं हैं, बल्कि उस युग के वैज्ञानिक चेतना को दर्शाती हैं। भास की रचनाओं में 'स्वप्नवासवदत्ता', 'प्रतीज्ञायौगंधरायणम्' और 'उरुभंग' में मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र और शरीर विज्ञान की झलक मिलती है, जो कि उसे युग की चिकित्सा प्रणाली और मनोविज्ञान के विकसित रूप को दर्शाता है। शूद्रक की प्रसिद्ध रचना 'मृच्छकटिकम्' में व्यापार, मुद्रा, सामाजिक वर्ग, नगरीय व्यवस्था का वर्णन मिलता है, जो उसे समय के आर्थिक और सामाजिक विकास को दर्शाता है। महाकवि कालिदास की रचनाओं में प्रकृति, खगोल भाषा बोध एवं दर्शन का अद्भुत समन्वय अंतर्निहित है, वहीं तुलसीदास, कबीर, सूरदास एवं रैदास ने भक्ति, वेदांत एवं लोकजीवन को अपनी रचनाओं के माध्यम से दर्शाया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में अनेक कथाओं से यह सिद्ध होता है कि समय एक स्थिर तत्व नहीं है, बल्कि सापेक्ष, बहुआयामी और अनुभवजन्य है। यह दृष्टिकोण आधुनिक भौतिकी के सापेक्षता सिद्धांत से मेल खाता है, जिसमें कहा गया है कि समय की गति गुरुत्वाकर्षण के अनुसार बदलती है। उदाहरण के लिए, ककुध्मी—बलराम के श्वसुर और रेवती की कथा टाइम डायलेशन की अवधारणा पर आधारित थी।

भारतीय लोककथाएँ और महाकाव्य भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण हैं। रामायण में पुष्पक विमान, संजीवनी बूटी और युद्धकौशल का वर्णन तकनीकी और चिकित्सा विज्ञान की ओर संकेत करता है। महाभारत में अस्त्र-शस्त्र, रणनीति और मनोविज्ञान का समावेश है। पंचतंत्र जैसी कथाएँ व्यवहार विज्ञान और नैतिक निर्णय की शिक्षा देती हैं। इन सभी ग्रंथों और कथाओं में विज्ञान को जीवन के साथ जोड़ा गया है, न कि उससे पृथक रखा गया। इस प्रकार, ये साहित्यिक रचनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि उस युग में रचनाकारों ने भी भारतीय ज्ञान परंपरा के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

भारतीय ज्ञान परंपरा, ज्ञान और विज्ञान का वह संगम रहा है ,जो तर्कशक्ति, अनुभव और आध्यात्मिकता को अविभाज्य मानता है। वेदों से आरंभ होकर आधुनिक प्रयोगशालाओं तक, यही दृष्टिकोण हमें एक समग्र और निरंतर विकसित होती विज्ञान की ओर अग्रसरित करता है।

वैदिक काल से ही भारत में ज्ञान को केवल धार्मिक या दार्शनिक दृष्टिकोण से नहीं देखा गया, बल्कि उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू किया गया। आधुनिक विज्ञान और तकनीक जिन सिद्धांतों, प्रमेयों और वैज्ञानिक नियमों पर आधारित हैं, उनका बीज भारतीय ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व ही बो दिया था। चाहे वह गति का नियम हो, ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत, परमाणु की अवधारणा या खगोल विज्ञान की गणनाएँ—इन सभी का उदाहरण वेदों, उपनिषदों, पुराणों और लोककथाओं में विस्तार से मिलता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान का संबंध केवल अतीत के चित्रण की गौरव गाथा नहीं है, बल्कि आज के विज्ञान के भविष्य की दिशा है। यह परंपरा अनुभव, तर्क, पयर्वेक्षण और नैतिकता के समन्वय से जन्मी है। भारतीय दर्शन ने ज्ञान को केवल जानने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि जीने की कला माना और यही दृष्टिकोण आधुनिक विज्ञान को भी अधिक मानवीय, समग्र और उद्देश्यपूर्ण बनाता है। अंततः भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान का संगम न केवल भारत की पहचान है, बल्कि वैश्विक बौद्धिक पुनर्जागरण की कुंजी है। 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।' अर्थात् संपूर्ण लोक सुखी हो! यह श्लोक इस विचार को पूर्णता देता है कि ज्ञान और विज्ञान का अंतिम उद्देश्य समस्त मानवता का कल्याण है, न कि केवल व्यक्तिगत उन्नति। भारतीय ज्ञान परंपरा में यही समग्र दृष्टिकोण विश्व कल्याण की नींव है।

आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृत	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
क्षण	**क्षणम्, मुहूर्तः, मुहूर्त्तम्**	**खिण, छिण**	**लम्हा**	**च़्युह**	**खिन,पलु**	**क्षण**	**खीण**	**क्षण**	**छिन, क्षण**	**क्षन**
क्षति	व्रणः क्षतिः, हानि	सट्, जखम घोट, घोटा	ज़ख़्म ज़रर, नुक़्सान	न्वखसान, गाट्	घाउ घाटो, नुक़्सानु	क्षती, जखम हानि, तोटा,	घाय नफो- नुकसान	क्षति, क्षत धा, नुक्सान, हानि, घाटो	खति, चोटपटक नोक्सानी, घाटा	क्षत, घा क्षति, लोकसान
क्षतिपूर्ति	क्षतिपूर्तिः	मुआवजा, हरजाना	तलाफी	न्वकसान पूर्-करन	भरिपूराई, भरिपाई	क्षति पूर्ती	भरपाय	क्षतिपूर्ति	क्षतिपूर्ति, मुआवजा, हर्जाना	क्षतिपूर्ति
क्षत्रिय	क्षत्रियः	खत्री	छत्री (खत्री)	ख्यतुर्य	खत्री	क्षत्रिय वर्ण क्षत्रिय पुरुष	क्षत्रीय क्षत्रिय पुरुश	क्षत्रिय (वर्ण) क्षत्रिय (पुरुष)	क्षत्रिय क्षत्रिय पुरुष, छेत्री	क्षत्रिय लोक
क्षमता	क्षमता, सामर्थ्यम्	समरत्था	ताक़त, मक़्दूर	ताकथ, ह्यमथ	ताक़त, सघ	सामर्थ्य, क्षमता	सामर्थ्य	शक्ति	सामर्थ्य क्षमता	क्षमता, सामर्थ्य
क्षमा	क्षमा, सहिष्णुता क्षमा, मर्षणम्	खिमा	मआफ़ी/ माफ़ी	बख़्शुन	खिम्या, माफ़ी	क्षमा	क्षमा	क्षमा, माफी	क्षमा	क्षमा, मार्जना
क्षय	क्षय, ह्रासः (पुं.)	खै	ज़वाल	नाश	खड़	क्षय, नाश यक्ष्मा नामक	क्षय	क्षय	ह्रास, क्षय	क्षय
क्षितिज	क्षितिजम्	दिसहद्द, दुमेल	उफ़क़	उफ़क	उफ़कु	क्षितिज	क्षितिज	क्षितिज	क्षितिज	क्षितिज (ख)
क्षुधा	क्षुधा, बुभुक्षा	भुख	भूक	ब्वछि	बुख	क्षुधा, भूक	भूक	क्षुधा, भूक	भोक	क्षुधा, खिदे
क्षेत्र	क्षेत्रम्	खेतर	खेत	खाह	खेतु, ब़नी	शेती	शेत	क्षेत्र, जमीन, खेतर	खेत, फाँट- मैदान	क्षेत्र, खेत, जमि
क्षेत्रफल	क्षेत्रफलम्, परिमाणम्	खेतरफल	रक़्बा	बाडव, र्वकबु	एराज़ी	क्षेत्रफळ	क्षेत्रफळ	क्षेत्रफळ (ल)	क्षेत्रफल	क्षेत्रफल

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोडो
क्षण, मूहूर्त्त, अल्प-समय	**मित्कूप्**	**क्षण, मुहूर्त्त (ख्यण)**	**क्षणमु**	**कणम, नोड़ि**	**क्षणम्**	**क्षण**	**खिन, पल**	**डँडेक्**	**ऋण, मुहूर्त**	**दान्दि, बुब्लि**
खत, घा अनिस्ट क्षति, हानि, लोकचान	अशोक्पा अनाबा अमाङ्बा	क्षति, आघात, धा हानि, लोकसान	देब्ब, गायमु नष्टमु, हानि	अळिवु नष्टम्	मुरि॒वॅु नष्टम्, हानि	गाय हानि, नष्ट	जखम घाटा	बाजाव लतकान, घाटा	व्रण क्षति, हानि, घाटा	खहा, गाराइ, द्रुखु मोननाय खहा, सेंलांनाय, जोबलांनाय
क्षतिपूरण, क्षतिर परिवत्ते दियाधन	अवात्पा मेन्खत्पा	क्षतिपूरण	नष्टपरिहारमु	नष्ट ईडु	नष्टपरिहारम्	नष्टभर्ति	हरजाना, मुआवजा	क्षतिपुरुन	क्षतिपूर्ति	खहा सुफुंनाय
क्षत्रिय, वर्णाश्रमर द्वितीय-वर्ण क्षत्रिय	क्षेत्री, शागै, निङथौचा क्षेत्री गी, मीओइ	ख्यत्रिय (क्षत्रिय) क्षत्रिय	क्षत्रियजाति क्षत्रियुडु	क्षत्रिय कुलम् क्षतिरियन्	क्षत्रियजाति क्षत्रियन्	क्षत्रिय	खत्तरी	क्षत्रिय (ख) क्षत्रिय जात	क्षत्रिय, राजपूत क्षत्रिय लोक, राजपूत लोक	क्षत्रिय, दावहारु फोलोर फोलेरनि मानसि
क्षमता, सामर्थ्य, बल	तौबा डम्बा	क्षमता (ख्यमता) सामर्थ्य	सामर्थ्यमु	तिऱ्मै	कळिवॅु	सामर्थ्य	समख्था	खेमता	सामर्थ्य, क्षमता	गोहो, बोलो, हासारनया
क्षमा, दोष-मार्जना	ङाक्पिबा	क्षमा (ख्यमा)	ओर्पु	मन्निक्कुम् इयल्बु	क्षम	क्षमे	खिमा, माफी	इका	क्षमा, सहिष्णुता	निमाहा, खेमा
क्षय, ह्रास, ध्वंस, कमियोवा	लैखा तारक्पा माङथरक्पा	क्षय (ख्यय)	क्षयमु	तेय्दल्	क्षयम	कोरगु, क्षीणिसु	खेह्	हेढ़ इदि?	क्षय, ह्रास	जामलांजोबनाय, सेलांनाय
दिग्बलय, दिगन्त	येङ्खम् होराइजन	चक्रबाल, दिगन्त	दिगन्तरेख॒ दिग्वलयमु	अडिवानम्	चक्रवाळं	क्षितिज	खितिज	क्षितिज (ख)	क्षितिज	अख्रां फैसालि अख्रां रुगुं
क्षुधा, भोक	अराम्बा, लाम्बा	क्षुधा, भोक	आकलि	पसि	विशप्पॅु	हसिवु	भुक्ख	रेंगेज	क्षुधा, भूख	उखैनाय
खेतिर-माटी, खेतिर पथार ठाँई	लौबुक	क्षेत्र, (ख्येत्र) जमि, खेत	पोलमु	वयल्	वयल्	होल	खेतर	खेत	क्षेत्र, खेत	आवथा, आबाद, हालाम
क्षेत्रफल, परिमाण, माटीकाली	एरिया, पाक्पा चाओबा	ख्येत्रफल (खेत्रफल)	विस्तीर्णमु, वैशाल्यमु	परप्पु, विस्तीर्णम	क्षेत्रफलम् विस्तीर्णम	क्षेत्रफल	टुकड़ा हिस्सा	खेत्रफल	क्षेत्रफल, परिमाण	दब्लाइथि

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

संस्कार में शिक्षा

सत्य सनातन वैदिक संस्कृति का प्रमुख सिद्धांत यह है कि जन्म से सभी मनुष्य शूद्र हैं। संस्कार से वे द्विज यानी श्रेष्ठ बनते हैं—जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।

(स्कंद पुराण, नागर खंड, अध्याय, 239/श्लोक 31)

मानवी माता से जन्म लेने मात्र से कोई मनुष्य नहीं बन जाता है, अपितु संस्कार ही व्यक्ति को मनुष्य बनाते हैं।

संतान को जन्म देने में महानतम योगदान पिता का होता है, परंतु संस्कारदात्री माता ही होती है। जीवन और विद्या के अनुभव से संस्कार की पुष्टि होती है। एक प्रसिद्ध उक्ति है—'ऋणं ह वै जायमानः'—जो भी मनुष्य पैदा हुआ है, वह ऋणस्वरूप है। ऋण भी तीन प्रकार के होते हैं—

1. देव ऋण—अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों का ऋण। तात्पर्य यह है कि जिसे आप बना नहीं सकते यानी पैदा नहीं कर सकते, उसे मिटाने का आपको कोई नैतिक अधिकार नहीं है। जैसे— मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि।

2. ऋषि ऋण—अर्थात् विद्या-अध्ययन और अनुसंधान करें तथा उसका समुचित उपयोग एवं प्रसार करें।

3. पितृ ऋण—अर्थात् माता-पिता और गुरु की श्रद्धापूर्वक सेवा और संतति का विस्तार करें।

इन सब ऋणों से उऋण होने पर ही मनुष्य धनी होता है, तभी वह धनी से धन्य होता है। इसके लिए संस्कार, संस्कृति और सभ्यता के प्रति अटूट दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखनी पड़ती है। संस्कारों से ही व्यक्ति का चरित्र निर्मित होता है और चरित्र से मनुष्य महान् बनता है। भारतीय सभ्यता एवं परंपरा में चरित्र को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। जैसा कि यजुर्वेद में उपदेश किया गया है—

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते
शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते
शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि
चरित्राँस्ते शुन्धामि॥

(यजुर्वेद 6/14)

1. वाचं ते शुन्धामि—हे मानव! अपनी वाणी को पवित्र करो, अर्थात् सर्वदा सत्य संभाषण करने का प्रयत्न करो, यानी बोलने से पहले सोचो तथा सोचकर सदैव सर्वहितकारी, प्रिय एवं सत्य वचन बोलो।

2. प्राणं ते शुन्धामि—शरीर में रक्त, जल तथा वायु का संचार यथोचित हो। इसके लिए नित्यप्रति प्राणायाम का अभ्यास अवश्य करो।

3. चक्षुस्ते शुन्धामि—आँख को पवित्र रखो, अर्थात् कोई पुरुष अपनी पत्नी के अतिरिक्त, किसी भी स्त्री को देखे तो माँ, बहन और पुत्री के रूप में देखे। इसी प्रकार, स्त्री भी अपने पति के अतिरिक्त, किसी पुरुष को देखे तो पिता, पुत्र और भाई के रूप मे देखे और सभी प्राणियों से मित्रवत् व्यवहार करे।

4. श्रोत्रं ते शुन्धामि—अपने कान से हमेशा सत्य, हितकारी और पवित्र वचनों का श्रवण करो। इस विषय में आचार्य चाणक्य के विचार स्तुत्य हैं। वे कहते हैं कि सज्जन पुरुष का समय विद्याध्ययन, चिंतन-मनन, कर्तव्यनिष्ठा इत्यादि में व्यतीत होता है, परंतु दुष्ट व्यक्ति का समय किसी की निंदा, बुराई, चुगली और अश्लीलता एवं अनैतिक व्यवहार में व्यतीत होता है।

5. नाभिं ते शुन्धामि—आयुर्वेद के अनुसार मानव-शरीर के जीवन एवं स्वास्थ्य का आधार पाचन तंत्र है। शरीर के समस्त नस-नाड़ियों का केंद्रबिंदु नाभि स्थान है। अतः इसे स्वस्थ एवं पवित्र रखो।

6. मेढ्रं ते शुन्धामि—वंशवृद्धि का आधार स्तंभ उपस्थ है। अतः इसे संयमित रखो और उचित उपयोग करो।

7. पायुं ते शुन्धामि—अर्थात् गुदा मार्ग को स्वच्छ एवं पवित्र रखो। तात्पर्य यह है कि उपस्थ एवं गुदा से अप्राकृतिक और अनैतिक कुकृत्य मत करो। इन सभी नियमों एवं सिद्धांतों का विधिवत् पालन एवं आत्मसात्

स्वामी धर्मबन्धु

- गुजरात के प्रांसला में श्री वैदिक मिशन ट्रस्ट की स्थापना कर राष्ट्रीय युवा शिविरों का आयोजन
- गंगा और नर्मदा समेत देशभर में पदयात्राएँ कर शिक्षा, संस्कार और राष्ट्रीय एकता का संदेश प्रसारण।
- वर्ष 2001 के भूकंप और अनेक आपदाओं में उन्होंने पुनर्वास और राहत कार्य किए। साथ ही, गौसेवा, सामूहिक विवाह और सामाजिक उत्थान जैसे सार्वजनिक सेवाओं का संचालन।
- सेवा और राष्ट्र निर्माण के कार्यों में रत।
- कृतियों में धर्म का यथार्थ स्वरूप तथा बदलते भारत का विशेष निरूपण।

संपर्क : dharmbandhuvedic@gmail.com

करना ही चरित्र की शुद्धता है। महर्षि मनु ने यह भी कहा है कि एक भी चारित्रिक दोष से मनुष्य नष्ट हो जाता है। छिद्रेण नश्यते नरः अर्थात् चरित्र व्यक्ति को श्रेष्ठ बनाता है।

संस्कार ही मनुष्य को उदारचरित बनाते हैं, जो अपने और पराये का भेद नहीं करते और संपूर्ण वसुधा को ही कुटुम्ब यानी परिवार की तरह मानते हैं, वे महान् हैं।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

(*महोपनिषद्, अध्याय 4, श्लोक 71*)

इसी तथ्य का दिग्दर्शन 'बाइबल' में इस प्रकार किया गया है—

Matthew 22:39

Thou shall love thy neighbour as thyself.

अर्थात् तुम अपने पड़ोसियों से अपने समान प्रेम करो, अर्थात् आपके समीप में किसी भी पूजा पद्धति, जाति या संप्रदाय का व्यक्ति हो उसका अपमान मत करो, अपितु उससे स्वयम् की भाँति प्रेम तथा उसका सम्मान करो। इस आशय को हम इस्लाम से इस प्रकार समझते हैं कि आपका पड़ोसी भूखा न सोए। यदि आपका पड़ोसी भूखा सोता है, तो आपको जन्नत नसीब नहीं होगा, पड़ोसी तो किसी भी मत मतांतर का हो सकता है, पर उसका ख्याल रखना ही मानवता है।

विश्व के महान शिक्षा संगठन, 'UNESCO' ने भी अपने घोषणापत्र में लिखा है—

"Education to be rooted in culture and committed to progress."

अर्थात् शिक्षा की जड़ें अपने संस्कार एवं संस्कृति में हों, परंतु विकास के प्रति प्रतिवद्धता हो। किसी भी स्थिर, प्रगतिशील एवं शांतिमय राष्ट्र के लिए ये चार आधार स्तम्भ हैं—

1. Honesty towards commitment—अर्थात् प्रतिबद्धता के प्रति ईमानदारी, should be honesty in action & honesty in conduct. You should not only be honest, but also appear to be honest. अर्थात् कर्म और आचरण में ईमानदारी होनी चाहिए; परंतु आपको केवल ईमानदार होना पर्याप्त नहीं है, ईमानदारी आपके आचरण में भी दिखाई पड़नी चाहिए।

2. Respect for constitution & system or law and order. अर्थात् संविधान, व्यवस्था और कानून के प्रति सम्मान।

3. Respect for education & educational institutions. अर्थात् शिक्षा और शिक्षण संस्थानों के प्रति सम्मान।

4. Respect for meritocracy. अर्थात् योग्यता के प्रति सम्मान।

संस्कार मनुष्य को इतना सक्षम बना देते हैं कि वह प्रत्येक कार्य को श्रेष्ठ बना दे। जैसे कि महात्मा गांधी ने लिखा है—मेरी अनपढ़ माँ, परंतु मेरी समझदार माँ ने मुझे बचपन में सिखाया था कि अगर तुम किसी के काम आ सकते हो, किसी के जीवन को बचा सकते हो, किसी की सहायता कर सकते हो, तभी तुम्हारा जीवन सफल है। My illiterate mother, but my wise mother, she taught me earlier, If you can help somebody in life only then your life is worth & living (collected works of Mahatma Gandhi Vol-40, page 126)

7 मई, 2007 को Bill Gates ने अपने Doctorate की मानद उपाधि के अवसर पर Harvard University के अंतर्गत अपने अनुभव इस प्रकार व्यक्त किए, "जो शिक्षा मेरी माँ ने मुझे दी, वह शिक्षा मुझे इस ईंट-पत्थर के जंगल हॉर्वर्ड से नहीं मिली। पढ़ाई में कमजोर होने के कारण जब मुझे यूनिवर्सिटी ने कैम्पस से निकाल दिया था, तब उन्होंने मुझे समझाया था कि महत्व यह नहीं है कि तुम्हारे पास स्टोर क्या है, तात्पर्य यह है कि जो क्षमता तुम्हारे पास है, उसका तुम उपयोग कैसे करते हो? इस शिक्षा ने मेरे जीवन को परिवर्तित कर दिया। मेरे साथ पढ़ने वाले, जो विद्यार्थी परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते थे, वे सब आज सॉफ्टवेयर कंपनी में मेरे कर्मचारी हैं और मैं उनका मालिक हूँ।"

संस्कारमय श्रेष्ठ कर्म को यज्ञ कहा जाता है—यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्मः। संस्कारी मनुष्य यज्ञ-योगमयी जीवनशैली अपनाता है। भोगमयी शैली से दूर रहता है। यजुर्वेद में कहा गया है—आयुर्यज्ञेन कल्पताम्। वह अपने संपूर्ण जीवन को यज्ञ, यानी परोपकारमय बना लेता है।

संस्कार और संस्कृति एक ही अर्थ ज्ञापित करते हैं। 'कृ' धातु और 'घञ्' प्रत्यय से 'कार' शब्द बनता है। अर्थ है—करने का भाव। 'कृ' से 'क्तिन्' प्रत्ययपूर्वक 'कृति' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—करने का भाव। 'सम्' उपसर्ग का अर्थ है—सम्यक्, उचित प्रकार से करना। सम्, कृति के बीच में 'सुप्' का आगम शोभास्पद के अर्थ में हुआ है। सम्यक् और शोभास्पद रूप से करने का भाव है—संस्कार या संस्कृति।

यजुर्वेद के अनुसार मनुष्यमात्र की संस्कृति एक ही है—सा प्रथमा संस्कृतिः विश्ववाराः। मनुष्य जाति एक और उसकी संस्कृति भी एक विश्ववरणीय है। संस्कारशील व्यक्ति की जीवन-दृष्टि ही बदल जाती है। वह सर्वत्र आत्मदर्शन में प्रवृत्त हो जाता है—अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।

संस्कार विश्व शांति का द्वार खोल देते हैं।

(*याज्ञवल्क्यस्मृति 1.8*)

प्रत्येक भारतीय शिक्षण संस्थान मानव-समुदाय को चरित्र की शिक्षा देता था। तभी महर्षि मनु ने कहा है—

एतत् देश प्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मनः।
स्वम् स्वम् चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।'

चरित्र की शिक्षा देने के कारण ही भारत 'विश्वगुरु' कहलाता था। अतः संस्कार के द्वारा मनुष्य का चरित्र-निर्माण आज की महती आवश्यकता है। दुर्भाग्य से इस ओर शिक्षा कोई सक्रिय कार्य नहीं कर रही है। आज के समाज की दारुण स्थिति को सुधारने का एकमात्र उपाय अच्छे मनुष्य का निर्माण है, जो संस्कारयुक्त शिक्षा से

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परंपरा की धारा

भारतीय सभ्यता विश्व की सबसे प्राचीन और निरंतर विकसित होती हुई परंपराओं में से एक है। समय के साथ यह अपने में अनेक प्रकारों के परिवर्तनों, खतरों और चुनौतियों को समाहित करने के बाद भी अपने मूल स्वरूप को बनाए रखने में सफल रही है, जिनमें पिछले एक हजार वर्षों में अनेक प्रकार के आततायी विदेशी आक्रमणों का विपरीत परिस्थितियों में प्रतिरोध करना और हानि उठाना सम्मिलित रहा है। इससे सिद्ध होता है कि इसमें कुछ ऐसे आधारभूत तत्व समाहित हैं, जो इसे हर प्रकार के आघातों से बचाए रखते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में शामिल 'परंपरा' शब्द का अर्थ मात्र रीति-रिवाज आदि न होकर एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक ज्ञान का व्यवस्थित संक्रमण है और इस प्रकार यह ज्ञान को फैलाने की संरचनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें ज्ञान, विज्ञान और दर्शन एकीकृत रूप से संचार पाते हैं, जिनका विकास दीर्घकालिक अनुभव, अनुपालन, प्रयोग और विश्लेषण द्वारा हुआ है। यह प्राचीन ज्ञान समय-समय पर सामना की गई चुनौतियों, सफलताओं और विफलताओं के साथ विकसित हुआ है, जो जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करता है, तथा इसका उद्देश्य है वर्तमान जीवन में अनुभव की जाने वाली चुनौतियों पर आगे शोध कर स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, विज्ञान, प्रकृति, पर्यावरण और अनुकूल विकास के नए आयामों की खोज करना। इससे वर्तमान भारत की विभिन्न समस्याओं को हल करने का ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्राप्त होगा, जिसे हम तार्किक रूप से भारतीय दृष्टि कह सकते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान का वह विशाल भंडार सम्मिलित है, जो गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा और दर्शन जैसे विविध विषयों से प्राप्त होता है, जिनका मूल स्रोत वेदों और अन्य प्राचीन ग्रंथों में है। इस परंपरा के निर्माण में अनेक विद्वानों, दार्शनिकों व वैज्ञानिकों ने योगदान दिया है, जिन्हें भूलवश केवल ऋषि कहकर सीमित कर दिया गया है। इस ज्ञान के प्रसार में हमारे गुरुकुलों और विश्वविद्यालयों ने अनूठी भूमिका निभाई है, लेकिन पिछली सहस्राब्दी में विदेशी आक्रांताओं व शासकों द्वारा चलाये गए निहित विमर्श के कारण उनकी भूमिका और महत्व को नकार दिया गया, जो स्वाधीनता के बाद भी किसी-न-किसी रूप में चलता रहा। इस काल में यह परंपरा मुगल, सूफी और यूरोपियन सहित विदेशी संस्कृतियों के संपर्क में आई, जिससे इसके रूप में कुछ परिवर्तन अवश्य आया, लेकिन फिर भी यह अपने मूल स्वरूप

ए.के. गांधी

जन्म : 1960, मेरठ, उत्तरप्रदेश

शिक्षा : एम.ए., एल.एल.बी., ए.डी.सी., सी.आई.सी.

प्रकाशन : इतिहासकार के रूप में—'1857 क्रांति व क्रांतिधरा', 'प्रताप, शिवाजी और छत्रसाल' व 'Dance to Freedom' आदि। अनुवादक के रूप में—'गोंड', 'कोमगता मरू', 'रेजांगला का युद्ध' आदि। इसके साथ ही, निबंध लेखन की कला', 'Language Across the Curriculum' आदि पुस्तकें प्रकाशित।

संप्रति : वायुसेना से सेवानिवृत्त। स्वतंत्र इतिहासकार, लेखक व अनुवादक के रूप में कार्यरत।

संपर्क : मोबाइल— 7500313951

ईमेल— akganndhi@yahoo.co.in

को बनाए रखने में सफल रही है। नवीन शिक्षा नीति के अस्तित्व में आने के बाद इस प्राचीन ज्ञान परंपरा को एक बार फिर महत्व दिया जाना हमारी विरासत के लिए नई ऊर्जा का कारक सिद्ध होगा। नई शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा को सम्मिलित करने से छात्रों का बौद्धिक विकास तो होगा ही, इससे उनकी सांस्कृतिक समझ को भी विस्तार मिलेगा, जिससे भारत दोबारा एक सुदृढ़, सांस्कृतिक राष्ट्र के रूप में उभर सकेगा।

इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा मात्र विषयों, आध्यात्मिकता, नैतिकता आदि का मिश्रण न होकर उस दर्शन का विराट स्वरूप है, जो हमारी जड़ों में सदियों से व्याप्त है और जो विपरीत परिस्थितियों में भी हमारे अस्तित्व को बचाए रखने में सहायक रहा है। इसका प्रमुख गुण वैज्ञानिकता है, क्योंकि इसने दर्शन सहित सभी विषयों को तर्क से सिद्ध करते हुए सारे ज्ञान को एकीकृत कर मानव-कल्याण के माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा में दर्शन (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत), विज्ञान (गणित, खगोल विज्ञान, आयुर्वेद), साहित्य और कला (शास्त्रीय संगीत व नृत्यकला, मूर्तिकला, प्रदर्शन कलाएँ आदि), तकनीकी (शिल्प, वास्तुकला, अभियांत्रिकी), सामाजिक विज्ञान (शासन, नैतिकता, सामाजिक संरचनाएँ) सहित जीवन के सभी पक्ष सम्मिलित होते हैं। इस ज्ञान परंपरा की प्रगति में हमारे प्राचीन साहित्य जैसे कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुंतलम्, पतंजलि कृत योगसूत्र, आर्यभट कृत आर्यभटियम, वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता, चरक कृत चरकसंहिता व सुश्रुत कृत सुश्रुतसंहिता व अन्य अनेक ग्रंथों ने भी हमारी ज्ञान परंपरा का क्षेत्र विस्तृत किया है, जो प्राचीनकाल से आरंभ हो मध्यकाल व वर्तमानकाल में भी निरंतर जारी रही है। यह भी ज्ञातव्य है कि इतिहास मात्र कुछ व्यक्तियों या घटनाओं का साक्षी न होकर उपरोक्त वर्णित विषयों सहित अन्य अनेक पक्षों का वर्णन होता है, जो भविष्य के निर्णय लेने में उपयोगी होता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का एक तत्व जो विशेष रूप से ध्यान खींचता है, वह है कि यहाँ पारंपरिक ज्ञान केवल पुस्तकों के माध्यम से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अंतरित नहीं हुआ है, बल्कि यह सांस्कृतिक रूप में विकसित होते हुए मौखिक शब्द द्वारा अपने मूल स्वरूप को बनाए रख सका है। यह प्रमाणित है कि वेद अत्यंत प्राचीनकाल से अस्तित्व में थे, जो लिपि के अभाव में भी मौखिक शब्द के रूप में बिना किसी विशेष परिवर्तन के एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक पहुँचते रहे। उन्हें लगभग 1000 ईसा-पूर्व में लिपिबद्ध किया गया। अवश्य ही ऐसी और भी ज्ञान परंपराएँ रही होंगी, जिन्हें मौखिक रूप से आगे बढ़ाया जाता रहा होगा, जिनके आधार पर अनेक ग्रंथ लिखे गए। लोककथाओं, लोकगीतों द्वारा यह मौखिक परंपरा आज तक भी जारी है, जिसने हमारे छोटे नगरों और गाँवों के इतिहास व संस्कृति को भरसक सहेज रखा है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि यह परंपरा अनुभव और अवलोकन पर आधारित है। इस ज्ञान के अंतरण में ऋषियों द्वारा पत्तों और छालों पर श्रमपूर्वक लिखी गई पांडुलिपियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ज्ञान को सहेजने में विभिन्न प्राचीन विश्वविद्यालयों के विशाल पुस्तकालयों ने भी महती भूमिका निभाई है। विदेशी आक्रांताओं द्वारा इस ज्ञान को नष्ट करने का भरपूर प्रयास किया गया, लेकिन वे अपने मंतव्य में पूरी तरह सफल नहीं हो सके। पिछली सहस्राब्दी में विदेशी संस्कृतियों से प्रभावित हो हमारे समाज में अनेक परिवर्तन अवश्य आए हैं, लेकिन उसके बाद भी हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा पर्याप्त रूप से मूल स्वरूप को बनाए रखने में सफल रही है और अनुकूल वातावरण मिलने पर वर्तमान समय में प्रगति करने को तत्पर प्रतीत होती है।

पश्चिमी दृष्टिकोण से इतिहास को तीन भागों में बाँटा जाता है—प्राचीनकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल। इस वर्गीकरण से ऐसा प्रतीत होता है, मानो एक निरंतर चल रहे कालखंड पर मनमाने तरीके से कुछ अवरोध खड़े कर दिये गए हों, जो ज्ञान के प्रवाह को रोकते ही हैं, इतिहास को टुकड़ों में बाँटकर उसकी सही समझ को भी सीमित करते हैं। इस वर्गीकरण का प्रभाव है कि अनेक इतिहासकार अपने अध्ययन को कुछ विशिष्ट कालखंडों में समेटकर अपनी सीमित समझ द्वारा स्वयं के ज्ञानवान होने का दावा कर रहे हैं। इस प्रकार के टुकड़ों में किये गए अध्ययनों से पक्षपात और अनिश्चितता का वातावरण भी पैदा होता है।

दूसरी ओर, भारतीय ज्ञान परंपरा में इतिहास को एक निरंतर कालखंड के रूप में देखा गया है, जिसमें निश्चित रूप से कुछ ऐसे मोड़ आए हैं, जिन्होंने समाज और राष्ट्र को अन्य घटनाओं की तुलना में कहीं अधिक प्रभावित किया है, लेकिन वे भारतीय इतिहास की निरंतरता को पूरी तरह प्रभावित नहीं कर पाए हैं। यह बात अलग है कि निहित स्वार्थ से प्रेरित विशिष्ट विमर्श के कारण प्रयास किया गया है कि भारतीय इतिहास को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जाए और विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं को सीमित संदर्भ और परिप्रेक्ष्य में देखा जाए। अब जब इस विमर्श का भंडाफोड़ कर दिया गया है तो यह आवश्यक है कि हम अपने इतिहास को सही संदर्भ में समझने का प्रयास करें, जिसमें भारतीय ज्ञान परंपरा एक सक्षम अवलंब के रूप में सामने आती है।

अन्य विषयों के समान, भारतीय ज्ञान परंपरा में इतिहास की अवधारणा केवल तथ्यों व तारीखों पर निर्भर नहीं है, वरन् यह संस्कृति व सभ्यता के विकास के साथ नवीन घटनाक्रमों को अपने में समाहित करती हुई अपने को सामाजिक-सांस्कृतिक-नैतिक-धार्मिक दर्पण के रूप में प्रस्तुत करती है। इसकी मूल भावना में वर्तमान और भविष्य के लिए शिक्षा प्रदान करने की प्रवृत्ति समाहित है, ताकि पिछली घटनाओं से सीखते हुए भविष्य को सँवारा जा सके।

इस संदर्भ में यह ध्यान रखने योग्य है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में अध्यात्म सहित अमूर्त भावनाओं और विचारों को भौतिक संसार से अधिक महत्व प्रदान किया गया है, जिसके कारण अनेक ग्रंथों में ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हुए भी उन्हें इतिहास के रूप में प्रस्तुत न करके उनमें समाहित जीवन-मूल्यों, राजनीति और दर्शन आदि अमूर्त विचारों के संगम के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसके कारण भारतीय संस्कृति के आलोचक मुखर हुए हैं, क्योंकि वे हमारी ज्ञान परंपरा के संदर्भ में हमारे इतिहास को समझ सकने में अक्षम सिद्ध हुए हैं।

यदि भारतीय ज्ञान परंपरा में सम्मिलित पुस्तकों के रूप में भारतीय इतिहास को देखा जाए तो प्रतीत होता है कि ऐसे बहुत कम ग्रंथ हैं, जिन्हें इतिहास के आधुनिक अर्थ में प्रमाण माना जा सके। इस परंपरा में वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण और महाकाव्य आदि सम्मिलित हैं, जिन सभी में ऐतिहासिक तथ्य व वर्णन उपस्थित हैं। इस बिंदु को भी ध्यान में अवश्य रखना चाहिए कि उस काल में तिथि और वर्ष आदि की गणना आज के समान नहीं थी। आज प्रयास हो रहा है कि प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वर्णित किया जा सके, जिसके लिए न केवल प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया जा रहा है, बल्कि सभी संबंधित पक्षों का अन्वेषण भी किया जा रहा है, जिसमें ग्रहों की स्थिति, सूर्य ग्रहण आदि घटनाओं के संदर्भ से तारीखों को निश्चित करने के प्रयास के साथ-साथ उत्खनन कार्य भी किया जा रहा है। इस राह में कुछ अवरोध अवश्य हैं, जैसे— पुरातात्त्विक तथ्यों और प्रमाणों का अभाव, लेकिन उत्खनन परियोजनाएँ भी हमारे प्राचीन इतिहास को सामने लाने में सफल हो रही हैं। यह सुखद है कि अनेक पुरातात्त्विक उत्खनन हमारे इतिहास को और अधिक प्राचीन एवं अधिक स्पष्ट सिद्ध करने में सहायक हुए हैं। एक अन्य अवरोध यह रहा है कि हमने ऐतिहासिक घटनाओं को धर्म व संस्कृति के आवरण से ढककर देखा है, जिससे अनिश्चितता का वातावरण फैला है, लेकिन सौनोली व अन्य स्थानों की खुदाई में प्राप्त प्रमाणों से हम निश्चित ही अपने प्राचीन इतिहास को एक निश्चित आवरण प्रदान कर पाएँगे, ऐसी आशा करने और आधुनिक इतिहासकारों और आलोचकों को उत्तर देने का ठोस धरातल अब हमारे पास है, जो उत्तरोत्तर उत्खननों से और अधिक मजबूत होता जा रहा है।

यदि हमारे प्राचीन ग्रंथों को ऐतिहासिक दस्तावेजों के रूप में देखा जाए तो हम जानते हैं कि ऋग्वेद में जनजातियों, नदियों और युद्धों का वर्णन है, व रामायण और महाभारत, महाकाव्य होते हुए भी इतिहास व भूगोल को अनूठे रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार, पुराण प्राचीन वंशावलियों, राजाओं और राजनैतिक-सांस्कृतिक घटनाओं को वर्णित करते हैं। निहित विमर्श के कारण इन ऐतिहासिक तथ्यों को मिथक के रूप में ढाल दिया गया, जिसके कारण हमारे प्राचीन इतिहास की अवहेलना हुई है। इसके विपरीत, तथ्य यह है कि गुरुकुलों और विश्वविद्यालयों (नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला) में इतिहास को अन्य विषयों के साथ-साथ पढ़ाया जाता था, जिसमें धर्म, नीति और लोक कल्याण के पाठों को समाहित किया गया था, जिसके कारण हमारी संस्कृति की निरंतरता प्रवाहित होती गई।

थोड़ा आगे के कालखंड को देखा जाए तो हम मौर्य, गुप्त और चोल काल में शिलालेख, स्तंभलेख और ताम्रपत्र आदि की मदद से अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का सही प्रकार वर्णन कर सकते हैं। ये प्रमाण तत्कालीन प्रासनिक व्यवस्था और मानवीय मूल्यों को पर्याप्त सही प्रकार से समझने में मदद करते हैं। दूसरे शब्दों में, इतिहास का प्रयोजन केवल व्यक्तियों, घटनाओं और भौतिक प्रगति की कहानी कहना न होकर हमारे मूल्यों और परंपराओं का संरक्षण भी है।

इस दृष्टि से, हमारे इतिहास में हमारी राष्ट्रीय विरासत के वे प्रमाण भी शामिल होने चाहिए, जो मुख्य धारा से अलग हटकर हों, जैसे— सामान्य लोगों और जनजातियों की संस्कृति, रीति-रिवाज और धरोहरें। हमारी परंपरा में इतिहास ऐसे आईने के समान होना चाहिए, जिसमें देखकर गलतियों और विफलताओं से सीखकर नवनिर्माण की प्रेरणा ली जा सके। इतिहास को हमें हमारी जड़ों से जोड़ना चाहिए, ताकि हम अपनी विविध संस्कृति और अनेकता में एकता के सूत्र को सही परिप्रेक्ष्य में समझकर व्यावहारिक जीवन में अपना सकें, जो भारतीयता व उसकी परंपराओं को समझने और भविष्य के भारत के निर्माण के लिए आवश्यक हैं। भारतीय सूत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सही अर्थ भी यही है कि हम आत्मज्ञान और आत्मविकास के माध्यम से विश्व की प्रगति के वाहक बनें।

यह सही है कि भारतीय ज्ञान परंपरा पर अधिक बल देने से छात्रों में कुछ पूर्वाग्रहों के विकसित होने संबधी चिंताएँ कुछ विद्वानों ने प्रकट की हैं, लेकिन इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान, जिसे अनेक बार पश्चिमी ज्ञान कह दिया जाता है, भी इस शिक्षा नीति में समन्वित है, जिसके अंतर्गत अंतःविषयक शोध में छात्रों की रुचि जागृत हो रही है, जिससे व्यक्ति, समाज और प्रकृति के मध्य निर्भरता के विचार को बढ़ावा मिलेगा। वर्तमान शिक्षा में इसके एकीकरण के अनेक लाभ हैं, क्योंकि यह शोध और सामाजिक अनुप्रयोगों के क्षेत्र में उपयोगी है।

भारतीय ज्ञान परंपरा वर्तमान जीवन में भी अनेक प्रकार से उपयोगी है। यह स्वास्थ्य, पर्यावरण और जीवन की विभिन्न चुनौतियों का सामना करने का आधार भी प्रस्तुत करती है। इस प्रकार यह परंपरा ज्ञान का एक समृद्ध और बहुआयामी भंडार है, जो इतिहास सहित जीवन के विभिन्न पक्षों में मूल्यवान व समग्र अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में सरस्वती

लोकहृदय को लुभाने वाला रमणीय वसंत जब आम की मंजरियों की सुवास से अपने आगमन का संदेशा भिजवाता है, तो भगवती सरस्वती के प्राकट्य की सुरभि भी लोक में प्रसृत हो जाती है। पौराणिक परंपरा में तीन महाशक्तियों की कल्पना की गई है—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। अज्ञानतिमिराच्छन्न संसार को ज्ञान के दैवी आलोक से प्रकाशित करने वाली शब्दब्रह्म और नादब्रह्म की साकार प्रतिमूर्ति सत् स्वरूपा सरस्वती ब्रह्माण्ड की अलौकिक महाशक्ति हैं। उनके कर में

विराजित पुस्तक शब्दब्रह्म का तथा वीणा नादब्रह्म का प्रतीक है। महासरस्वती की महाशक्ति यही है कि मानव में तेजस्विता, विवेकशीलता का आधान करने वाली महाध्वनि उन्हीं की वीणा से झंकृत होती है। उनका वाहन हंस नीरक्षीरविवेकी है, जो सत् और असत् का भेद प्रकट कर सकता है। धवलवसना, श्वेतकमलासना, धवलस्फटिक की माला से विभूषित, श्वेतहंसवाहना सर्वशुक्ला सरस्वती की शुक्लता ज्ञान की ज्योतिर्मयता का प्रतीक है। अज्ञान तमस् है, अंधकार है और ज्ञान ज्योतिर्मय है। वैदिक ऋषियों की पुकार 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' उसी ज्ञान के लिए, उसी ज्योति के लिए, उसी सरस्वती के लिए है।

संस्कृत के गत्यर्थक 'सृ' धातु से 'असुन्' प्रत्यय लगने पर 'सरस्' शब्द बनता है। यह सरस् जल और वाणी, दोनों का वाचक है। गतिशीलता इसका प्रधान गुण है। इस सरस् की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हैं। तात्पर्य यह है कि सरस्वती का जो नाता ज्ञान से है वही जल से भी है। ज्ञान हो या कि जल, दोनों गतिशील होते हैं। ऋग्वेद में सरस्वती को सर्वश्रेष्ठ नदी, सर्वश्रेष्ठ देवी और सर्वश्रेष्ठ माँ कहकर संबोधित किया गया है।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।

(ऋग्वेद, 2.41.16)

वैदिक साहित्य में सरस्वती देवी और नदी, दोनों रूपों में वर्णित है। पुराणों में जिस तरह गंगा के प्रति अतिशय श्रद्धा प्रकट की गई है, उसी तरह वेदों में, विशेषकर ऋग्वेद में, सरस्वती के प्रति श्रद्धाभाव प्रकट किया गया है। ऋग्वेद में नदीरूपा सरस्वती का, जो

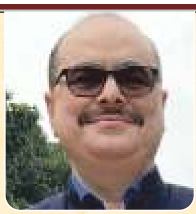

डॉ. शैलेश कुमार मिश्र

शिक्षा : एम.ए. (संस्कृत) लब्धस्वर्णपदक, एम.ए. (हिंदी) लब्धस्वर्णपदक, पी-एच.डी.

संप्रति : असिस्टेंट प्रोफेसर, राजकीय संस्कृत कॉलेज, राँची (विनोबा भावे विश्वविद्यालय), तीस वर्षों से इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट मीडिया में सृजनात्मक सक्रियता।

प्रकाशन : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से 'शेष कथन', 'पारावार के पार' (दोनों के अनुवादक) सहित नौ पुस्तकें एवं छह संपादित ग्रंथ प्रकाशित।

सम्मान : दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे द्वारा पुरस्कृत।

संपर्क : मोबाइल– 7541933637

ईमेल– shail.vbu@gmail.com

चित्रण मिलता है उससे यह ज्ञात होता है कि सरस्वती एक तीव्र प्रवाह वाली नदी थी, जो अपनी वेगवती धारा से मार्ग में आए शिलाखंडों को तोड़ डालती है।

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वती मा विवासेम धीतिभिः।।

(ऋग्वेद, 6.61.2)

अर्थात् जो सरस्वती अपने तीव्र वेग से पर्वत के किनारों को कमलनाल की तरह तोड़ देती हैं, हम उन सरस्वती की भक्ति करते हैं। सरस्वती अपनी सहायक नदियों की तुलना में सबसे अधिक धन-धान्य प्रदान करने वाली है। अतः ऋग्वेद के ऋषि ने इसे 'वाजिनीवती' अर्थात् अन्नमयी कहा है।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। *(ऋग्वेद, 1.3.10)*

सरस्वती के संबंध में एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसकी सात धाराएँ अथवा सात सहायक नदियाँ थीं। ऋग्वेद में सरस्वती की सात बहनों की चर्चा मिलती है—

उतः न प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा।
सरस्वती स्तोम्या भूत।। *(ऋग्वेद, 6.61.10)*

ऋग्वेद में ही 'सप्तसिन्धवः' और 'सरस्वती सप्तथी सिंधुमाता' (ऋग्वेद, 7.36.6) से सरस्वती की सात धाराओं अथवा उसकी सात सहायक नदियों का संकेत मिलता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि सरस्वती एक विशाल और प्रवाहमयी नदी रही होगी। यजुर्वेद में सरस्वती की पाँच सहायक नदियों—शुतुद्रि (सतलज), चंद्रभागा या असिक्नी (चेनाब), विपाशा (व्यास), दृषद्वती (घग्घर) और इरावती या परुष्णी (रावी) सरस्वती को संगमित करती हैं—

पंच नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत् सरित्।। *(यजुर्वेद, 34.11)*

इस मंत्र के व्याख्याकार महीधर लिखते हैं कि पाँचों नदियाँ अपना नाम छोड़कर सरस्वती का नाम धारण कर लेती हैं, अर्थात् पाँचों नदियाँ सरस्वती में समाहित हो जाती हैं।

स्कंदपुराण में सरस्वती की दो धाराओं, प्राची (पूर्वमुखी) और प्रतीची (पश्चिममुखी) का उल्लेख प्राप्त होता है। सरस्वती से जुड़ा एक रोचक प्रसंग स्कंदपुराण के प्रभासखंड में मिलता है—

कथा के अनुसार, देवताओं ने दानवों के संहार हेतु महर्षि दधीचि की हड्डियों से अस्त्र-शस्त्र बनाए। जब उनके पुत्र पिप्पलाद को यह ज्ञात हुआ कि पिता ने देवताओं के कारण शरीर त्यागा, तो उन्होंने देवताओं को दंड देने का संकल्प लिया। उन्होंने कठोर तपस्या कर अपनी जंघा से वड़वानल को उत्पन्न किया और उसे आदेश दिया कि वह समस्त देवताओं को भस्म कर दे। देवता भयभीत होकर भगवान विष्णु की शरण में पहुँचे। विष्णु ने उन्हें आश्वस्त किया और वड़वाग्नि से कहा कि वह एक-एक कर देवताओं को भस्म करे, सबको एक साथ नहीं। देवताओं ने एक युक्ति लगाई और कहा कि जल उनका अग्रज है, अतः वह पहले पृथ्वी पर स्थित जल को भस्म करे। जब विष्णु ने वड़वानल से पूछा कि उसे जलस्थान तक कैसे पहुँचाया जाए, तो उसने कहा कि वह केवल किसी कुमारी के करस्पर्श से जा सकता है, घोड़े आदि से नहीं।

विष्णु ने गंगा से आग्रह किया कि वह वड़वाग्नि को समुद्र तक पहुँचाए, पर गंगा ने असमर्थता जताई। यमुना, सिंधु और अन्य नदियाँ भी पीछे हट गईं। अंततः विष्णु ने सरस्वती से यह कार्य करने को कहा। सरस्वती ने उत्तर दिया कि वह बिना ब्रह्मा के आदेश के कोई कार्य नहीं कर सकतीं। विष्णु ने ब्रह्मा से निवेदन किया और ब्रह्मा ने सरस्वती को देवताओं की रक्षा हेतु यह कार्य करने की अनुमति दी। सरस्वती ने शर्त रखी कि यदि वह वड़वानल को अपने साथ ले जाएँगी, तो उसकी ज्वालाएँ उनके शरीर को भस्म कर देंगी और कलियुग में पापियों के स्पर्श का दुःख उन्हें सहना पड़ेगा। ब्रह्मा ने उन्हें निर्देश दिया कि वे पृथ्वी के भीतर-भीतर प्रवाहित होकर समुद्र तक जाएँ और जब अग्नि का ताप असह्य हो, तो कहीं-कहीं पृथ्वी को भेदकर प्रकट हो जाएँ। पूर्व दिशा की ओर बहने से उनके तटों पर तीर्थ बनेंगे।

सरस्वती ने ब्रह्मा का आदेश स्वीकार कर लिया। विदा होते समय गंगा ने पूछा, "सखी! हम फिर कब मिलेंगी?" सरस्वती ने उत्तर दिया, "जब भी पूर्व दिशा की ओर देखोगी, मुझे पाओगी।"

इस प्रकार, सरस्वती वड़वानल को लेकर पश्चिम समुद्र की ओर चल पड़ी। प्रतीची सरस्वती को स्कंदपुराण में 'पंचस्रोता' कहा गया है। हरिणी, वज्रिणी, न्यंकु, कपिला और सरस्वती; ये पाँच उसकी धाराएँ हैं।

हरिणी वज्रिणी न्यंकुः कपिला च सरस्वती।
पानावगाहनान्नृणां पंचस्रोताः सरस्वती॥

(स्कंदपुराण, प्रभासखंड 33/54)

पश्चिम दिशा में बहती हुई सरस्वती द्वारवती तीर्थ (वर्तमान द्वारका) में पहुँचती हैं—

तस्मादन्यत् सरस्वत्यां तीर्थं द्वारवती स्मृतम्।
तीर्थानां प्रवरं देवि यत्र संनिहितो हरिः॥

(स्कंदपुराण, प्रभासखंड 35/75)

प्रतीची सरस्वती का संगम स्थान सोमनाथ तीर्थ (सोमेश) से दक्षिण-पूर्व दिशा में समुद्र में बताया गया है—

सोमेशाद्दक्षिणाग्नेये सागरस्य समीपतः।
संस्थिता तु महादेवी वडवानलधारिणी॥

(स्कंदपुराण, प्रभासखंड 34/32)

प्राची सरस्वती, सरस्वती की पूर्वाभिमुख धारा है, जो आगे चलकर गंगा में विलीन हो जाती है। स्कंदपुराण बताता है कि धारेश्वर तीर्थ से चलकर यह गंगोद्भेद तीर्थ में पहुँचती है, जहाँ गंगा और सरस्वती का संगम होता है—

धारेश्वरात् पुनश्चान्यः गंगोद्भेदमिति स्मृतम् ।
सारस्वतं तथा गांगं यत्रैकं संस्थितं जलम् ॥

(*स्कंदपुराण, प्रभासखंड 35/47*)

इस संगम का उल्लेख रामायण में भी है। अयोध्याकांड में भरत जब कैकेय से लौटते हैं, तो वे गंगा और सरस्वती के संगम से गुजरते हैं—

सरस्वतीं च गंगां च युग्मेन प्रतिपद्य च ॥

(*रामायण, अयोध्याकांड 71/5*)

स्कंदपुराण के अनुसार सरस्वती सिद्धेश्वर तीर्थ से पश्चिमाभिमुख हो जाती है—

सिद्धेश्वरात् पुनस्तस्मात्प्रवृत्ता पश्चिमामुखी ॥

(*स्कंदपुराण, प्रभासखंड 35/51*)

प्राची सरस्वती को स्कंदपुराण में अत्यंत दुर्लभ बताया गया है, विशेषकर कुरुक्षेत्र, प्रभास और पुष्कर में—

प्राची सरस्वती देवि! सर्वत्र सुदुर्लभा।
विशेषेण कुरुक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा ॥

(*स्कंदपुराण, प्रभासखंड 33/109*)

यह भी उल्लेख मिलता है कि प्राची सरस्वती, गंगा से भी श्रेष्ठ है। महाभारत युद्ध के पश्चात् अपने भाई-बंधुओं के वध से पापमुक्ति के लिए उद्यत युधिष्ठिर को भगवान कृष्ण कहते हैं कि पापमुक्ति के लिए न गया जाने की आवश्यकता है, न पुष्करतीर्थ जाने की और न ही गंगास्नान की कोई आवश्यकता है। हे युधिष्ठिर! प्राची सरस्वती में स्नान कर लेने से तुम्हारे सारे पाप धुल जाएँगे—

मा गयां गच्छ कौन्तेय मा गंगां मा च पुष्करम् ।
तत्र गच्छ कुरुश्रेष्ठ यत्र प्राची सरस्वती ॥

(*स्कंदपुराण, प्रभासखंड 36/30*)

स्कंदपुराण के प्रभासखंड के 35वें और 36वें अध्यायों में प्राची और प्रतीची सरस्वती के प्रकट, प्रवाहित और अंतर्धान होने के वृत्तांत तथा उनके तीर्थों का विस्तार से वर्णन मिलता है। संभव है कि ऋग्वेद की रचना के बाद किसी भूगर्भीय परिवर्तन के कारण सरस्वती दो धाराओं—प्राची और प्रतीची में विभक्त हो गई हो।

सरस्वती का उद्गम

सरस्वती का उद्गम स्थल हिमालय है। प्रथमतः, ऋग्वेद स्पष्टतः कहता है कि सरस्वती पर्वतप्रदेश से निकलती है और समुद्र में जा मिलती है—

एका चेत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।

(*ऋग्वेद, 7.95.2*)

महाभारत (वनपर्व) में पुलस्त्य ऋषि बताते हैं कि सौगंधिक वन के आगे एक अत्यंत पुण्यमयी नदी सरस्वती का उद्गम है, जो प्लक्ष वृक्ष की जड़ से टपकती है—

प्लक्षाद्देवी सुता राजन् महापुण्या सरस्वती ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत वल्मीकान्निः सृते जले ॥ (*वनपर्व, 84.7*)

स्कंदपुराण भी इसी वृक्ष से उद्गम की बात कहता है—

हिमवन्तं गिरिं प्राप्य प्लक्षात्तत्र विनिर्गता ॥

(*स्कंदपुराण, प्रभासखंड, 33.41*)

सरस्वती का दृश्य-अदृश्य स्वरूप

ऋग्वेद के समय सरस्वती प्रवहमान नदी थी—

एका चेत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।

(*ऋग्वेद, 7/95/2*)

महाभारत के अनुसार सरस्वती कहीं दृश्य हैं, कहीं अदृश्य—

दृश्याऽदृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती । (*भीष्मपर्व, 6.50*)

भीष्मपर्व में गंगा की सात धाराओं का उल्लेख है, जिनमें एक सरस्वती भी है।

सरस्वती के सात रूप

महाभारत के शल्यपर्व में सरस्वती के सात नामों—सुप्रभा, कांचनाक्षी, विशाला, मनोरमा, औघवती, सुरेणु और विमलोदका का वर्णन है, जो विभिन्न स्थलों पर विभिन्न नामों से प्रकट हुईं। महाभारत में सरस्वती के प्रवाहित होने का उल्लेख भी है तथा लोप होने की भी चर्चा मिलती है। विनशन तीर्थ में वह अदृश्य हो जाती हैं—

ततो विनशनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
गच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती ॥ (*वनपर्व, 82.111*)

लोमश ऋषि बताते हैं कि यहाँ विनशन तीर्थ में वह पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट हो गई हैं, किंतु चमसोद्भेद तीर्थ में वह पुनः प्रकट होती हैं—

एष वै चमसोद्भेदो यत्र दृश्या सरस्वती ॥ (*वनपर्व, 130.5*)

वामनपुराण में भी सरस्वती की दृश्य-अदृश्य गति और पश्चिम प्रवाह का उल्लेख मिलता है—

प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यायाददृश्यगतिः शुभा ॥

(*वामनपुराण, 32.2*)

इन सभी वैदिक और पौराणिक साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि सरस्वती एक विशाल और तीव्र प्रवाह वाली नदी थी, जिसका उद्गम स्थल हिमालय है। इसकी दो धाराएँ थीं—प्राची (पूर्वाभिमुख), जो गंगा में विलीन होती थी, और प्रतीची (पश्चिमाभिमुख), जो समुद्र में मिलती थी। इसका स्वरूप दृश्य और अदृश्य, दोनों रहा है। सरस्वती से जुड़ा भूगर्भीय और सांस्कृतिक परिवर्तन सिंधु घाटी सभ्यता के लोप से जुड़ा हो सकता है। सरस्वती के रहस्यों का पूर्ण उद्घाटन न केवल ऋग्वेद के रचनाकाल को स्पष्ट कर सकता है, बल्कि यह मानव-सभ्यता के इतिहास में एक नया अध्याय भी जोड़ सकता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में कला

भारतीय कला का इतिहास अत्यंत प्राचीन, बहुरंगी और गहन है, जो मानव-सभ्यता के आरंभिक चरणों से लेकर ऐतिहासिक काल तक निरंतर विकसित होता रहा। मानव-सभ्यता के आदिकाल में, जब लिखित भाषा और व्यवस्थित समाज का निर्माण नहीं हुआ था, तब भी मनुष्य ने अपने विचारों और अनुभवों को व्यक्त करने का मार्ग कला में खोजा। इसी काल में बने गुफा चित्र मानव की सृजनात्मक प्रवृत्ति और प्रकृति से गहरे संबंध का प्रतीक हैं। भीमबेटका जैसे स्थलों पर बने शैलचित्र हमें यह बताते हैं कि प्रारंभिक मनुष्य केवल जीवित रहने तक सीमित नहीं था, बल्कि वह अपने जीवन, विश्वास और भावनाओं को कला के माध्यम से अभिव्यक्त करता था।

उत्तमा दीक्षित

शिक्षा : एम.एफ.ए., पी-एच.डी.

प्रकाशन : 'कला संस्कृति एवं लोक चित्रकला' पुस्तक प्रकाशित। इसके अतिरिक्त, विभिन्न पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में आर्ट वर्क प्रकाशित।

सम्मान : कला के क्षेत्र में अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित।

संप्रति : बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत

संपर्क : मोबाइल– 9793331447

ईमेल– uttama.dixit@gmail.com

भीमबेटका शैलचित्र, प्रागैतिहासिक

सिंधु घाटी सभ्यता विश्व की प्राचीनतम और सुव्यवस्थित शहरी सभ्यताओं में से एक मानी जाती है। इस सभ्यता की कला न केवल उसकी तकनीकी दक्षता और शिल्प-कौशल को दर्शाती है, बल्कि धार्मिक आस्थाओं, सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक उन्नति की झलक भी प्रस्तुत करती है। कांस्य मूर्तियाँ, पत्थर और टेराकोटा प्रतिमाएँ, मुहरें तथा मिट्टी के बर्तन—सब मिलकर इस सभ्यता के गहन सौंदर्यबोध और उन्नत कारीगरी के प्रमाण हैं।

भारतीय संस्कृति का मूल आधार वेद हैं। इन्हीं वेदों में कला, साहित्य, संगीत, स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला के बीज निहित हैं। वेद केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि इनमें मानव-जीवन, प्रकृति और सौंदर्य के गहरे संबंध का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में चित्र और प्रकृति का सौंदर्य, सामवेद में संगीत और वाद्ययंत्र, यजुर्वेद में यज्ञ-वेदी और नृत्य-मुद्राएँ तथा अथर्ववेद में शिल्प, वास्तु और गृह-निर्माण की झलक मिलती है। इस प्रकार, वेदों ने कला को केवल मनोरंजन का साधन नहीं माना, बल्कि उसे आध्यात्मिक अनुभव, धार्मिक अनुष्ठान और सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग बताया। षडङ्गों के माध्यम से भाषा, छंद, उच्चारण और ज्योतिष को भी कला के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसलिए कहा जा सकता है कि वेद ही भारतीय कला-संस्कृति की सबसे प्राचीन और मजबूत नींव हैं। भारतीय चित्रकला का स्वर्णयुग कहे जाने वाले अजंता की गुफाएँ न केवल बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण धरोहर हैं, बल्कि भारतीय कला की शिखर उपलब्धि भी हैं। यहाँ के भित्तिचित्र और मूर्तिकला तत्कालीन जीवन, धर्म, समाज और संस्कृति का जीवंत चित्र प्रस्तुत करते हैं। इन चित्रों में करुणा, त्याग, भक्ति और सौंदर्यबोध का अद्भुत संगम दिखाई देता है, जो आज भी दर्शकों को गहराई से प्रभावित करता है।

भारत में प्रागैतिहासिक शैल चित्रों का उदाहरण मनुष्यों की रचनात्मकता, सांस्कृतिक प्रथाओं और पारिस्थितिक समझ के प्रमाण के रूप में प्राप्त होते हैं। पुरापाषाण, मध्यपाषाण और नवपाषाण काल के दौरान बनायी गई कलाकृतियाँ, न केवल सौंदर्य गुणों को प्रदर्शित करती हैं, बल्कि मनुष्यों, जानवरों और उनके पर्यावरण के बीच के जटिल संबंधों को भी दर्शाती हैं। इन प्राचीन कलाकृतियों में खोजे गए असंख्य विषयों में जानवरों और प्रकृति के चित्रण एक केंद्रीय स्थान रखते हैं, प्रागैतिहासिक मानस और उनके अस्तित्ववादी विश्वदृष्टि में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। भारतीय प्रागैतिहासिक गुफा चित्र एक कलात्मक खजाना हैं, जो प्रारंभिक मनुष्यों द्वारा अपने पर्यावरण के साथ साझा किये गए जटिल संबंधों को प्रकट करते हैं। इन चित्रों में आवर्ती विषयों के बीच शिकार के साथ मानव और प्रकृति का चित्रण सामने आता है, जो प्रागैतिहासिक जीवन में उनकी प्रमुखता को दर्शाता है। ये आकृतियाँ न केवल मानव के बीच उनके दैनिक जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं, बल्कि युग के आध्यात्मिक, प्रतीकात्मक और अस्तित्ववादी आयामों का भी प्रतीक हैं।

इन कलाकृतियों में चित्रित मानव तथा प्रकृति की विशेषता उनके गतिशील रूप और बारीकी से देखे गए विवरण हैं। हिरण, बाइसन, हाथी, जंगली सूअर और बाघ जैसे जीव दृश्य कथाओं पर हावी हैं, जो अकसर शिकार के रूप में दिखाई देते हैं। बल्कि इन जानवरों की आकृतियों को उनकी मांसलता और गति पर जोर देते हुए उल्लेखनीय सटीकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए, एक बाघ को मध्य-झपट्टा मारते हुए चित्रित किया गया है। उसकी गति की तीव्रता को पकड़ने के लिए उसका शरीर फैला हुआ है। इसी तरह, मनुष्यों को अकसर झुंडों में दिखाया जाता है। उनके हाथों में हथियार को सतर्कता और शक्ति का संकेत देते हैं। ये प्रस्तुतीकरण कलाकारों में उनके आस-पास प्रकृति की रचनाओं को तथा उनके दिनचर्या के कार्यों को समझने का प्रयास करते हैं, जो उन्होंने अपने परिवेश के साथ करीबी अवलोकन और बातचीत के माध्यम से प्राप्त की है। शिकार के दृश्य सबसे अधिक प्रचलित रूपांकनों में से हैं, जिनमें जानवरों का शिकार और शिकारी, दोनों के रूप में दिखाया गया है। इन चित्रणों में अकसर भाले या धनुष-बाण से लैस मनुष्यों के समूह को जानवरों का पीछा करते या घात लगाते हुए दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए, भीमबेटका में, चित्रों में एक बड़े हिरण को घेरने वाले शिकारियों के समूहों को दर्शाया गया है, उनकी मुद्राएँ और हथियार एक समन्वित रणनीति का संकेत देते हैं। ऐसे दृश्य शिकार के लिए आवश्यक सहयोगात्मक प्रयासों और उनके आहार और अस्तित्व में जानवरों की केंद्रीयता पर जोर देते हैं। ये कलाकृतियाँ शिकार से पशुपालन की ओर धीरे-धीरे बदलाव का भी दस्तावेजीकरण करती हैं, जिसमें मवेशियों, बकरियों और भेड़ों की छवियाँ पालतू बनाने की शुरुआत का संकेत हैं। यह परिवर्तन मानव-पशु संबंधों में एक महत्वपूर्ण विकास का प्रतीक है, जो जीवन-शैली और निर्वाह रणनीतियों में परिवर्तन को दर्शाता है।

ये चित्रण प्रागैतिहासिक भारत के पारिस्थितिक परिदृश्य की एक झलक भी प्रस्तुत करते हैं। चित्रों में कुछ जानवरों और पक्षियों की व्यापकता क्षेत्र की जैव विविधता और उन विशिष्ट आवासों को दर्शाती है, जिनमें प्रारंभिक मानव निवास करते थे। हाथियों और बाघों जैसे बड़े स्तनधारियों की उपस्थिति घने जंगलों का संकेत देती है, जबकि जलपक्षी और जलीय प्रजातियों का चित्रण नदियों या आर्द्रभूमि से निकटता का संकेत देता है। यह पारिस्थितिक जागरूकता मनुष्यों और उनके पर्यावरण के बीच गहरे संबंध को रेखांकित करती है, एक ऐसा रिश्ता जो व्यावहारिक और सम्मानजनक दोनों था।

इन प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों की स्थायी विरासत सहस्राब्दियों तक संवाद करने की उनकी क्षमता में निहित है। वे अतीत और वर्तमान के बीच की खाई को दूर करते हुए प्रारंभिक मनुष्यों के जीवन, विश्वासों और आकांक्षाओं में एक रास्ता प्रदान करते हैं, जो विशेष रूप से प्रकृति के चित्रण, पारिस्थितिकी और संरक्षण के बारे में समकालीन चिंताओं के साथ प्रतिध्वनित होते हैं, जिनमें मनुष्यों और प्राकृतिक दुनिया के बीच जटिल और अन्योन्याश्रित संबंधों की याद दिलाते हैं। अपनी कला के माध्यम से, प्रागैतिहासिक समुदायों ने मानव और प्रकृति के साथ अपने संबंध को अमर बना दिया, और अपनी रचनात्मकता, सरलता और जीवन के प्रति श्रद्धा का प्रमाण छोड़ दिया, जो प्राचीन भारतीय सौंदर्यशास्त्र, आध्यात्मिकता और सामाजिक मूल्यों की झलक प्रदान करते हैं, जो प्रतीकात्मक और सजावटी, दोनों उद्देश्यों को पूरा करते हैं। सांस्कृतिक, धार्मिक और पारिस्थितिक अर्थों से ओत-प्रोत ये निरूपण, प्राचीन भारतीय विचार में मानव और गैर-मानवीय दुनिया के अंतर्संबंध की सूक्ष्म समझ प्रदान करते हैं।

इसी विकास क्रम में सिंधु घाटी सभ्यता के हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल, धौलावीरा, कालीबंगा और राखीगढ़ी जैसी शहरी बस्तियाँ न केवल उन्नत नागरिक योजना को दर्शाती हैं, बल्कि अपने कलात्मक अवशेषों के माध्यम से एक उल्लेखनीय सांस्कृतिक संवेदनशीलता को भी उजागर करती हैं। इन स्थलों की खुदाई से पता चलता है कि कला यहाँ के लोगों के जीवन में गहराई से जुड़ी हुई थी। यह कला मूर्तिकला, कांस्य ढलाई, टेराकोटा मॉडलिंग, मुहरों और मिट्टी के बर्तनों (टेराकोटा) जैसे विभिन्न रूपों में मौजूद थी। ये कलाकृतियाँ केवल सौंदर्य मूल्य की अलग-थलग वस्तुएँ नहीं हैं, बल्कि सभ्यता के सामाजिक, धार्मिक और कार्यात्मक आयामों की मूर्त अभिव्यक्ति हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों की कलात्मकता उनकी तकनीकी निपुणता, कल्पना और जीवन के अनुभवों और विश्वासों को स्थायी दृश्य रूपों में ढालने की उनकी अद्वितीय क्षमता को दर्शाती है।

विश्व कला में सिंधु घाटी सभ्यता के सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक इसकी मूर्तिकला परंपरा है। यद्यपि बहुत कम पत्थर की मूर्तियाँ बची हैं, जो बची हैं वे उल्लेखनीय रूप से परिष्कृत हैं। तथाकथित 'पुरोहित-राजा' की प्रसिद्ध आवक्ष प्रतिमा, जो स्टीटाइट में तराशी गई है, एक गंभीर आकृति को दर्शाती है, जिसकी आँखें आधी बंद हैं। उन्होंने एक पैटर्न वाला शॉल पहना हुआ है, और उनके चेहरे के भाव सावधानीपूर्वक गढ़े गए हैं, जिसे अधिकार, ज्ञान या धार्मिक नेतृत्व का प्रतीक माना जाता है। इसकी शैलीकरण और शांत गरिमा एक ऐसे समाज का सुझाव देती है, जो विशुद्ध रूप से प्राकृतिक चित्रण से ज्यादा प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व को महत्व देता था। इसके पूरक के रूप में हड़प्पा से प्राप्त लाल बलुआ पत्थर का पुरुष धड़ है, जो अपनी सूक्ष्म मांसपेशियों के लिए उल्लेखनीय है। यह त्रि-आयामी आयतन में मानव रूप का अध्ययन करने में एक सचेत रुचि को इंगित करता है। ये पत्थर की मूर्तियाँ, हालाँकि संख्या में सीमित हैं, किंतु रूप, संतुलन और प्रतीकात्मक उपस्थिति की एक उन्नत समझ को दर्शाती हैं।

पुरोहित राजा (मोहनजोदड़ो से प्राप्त)

पत्थर की नक्काशी के समानांतर, कांस्य ढलाई सिंधु संस्कृति के दायरे में व्यापक रूप से फली-फूली। 'लॉस्ट-वैक्स' तकनीक, जिसका अभ्यास आज भी भारत के कुछ हिस्सों में होता है, का असाधारण कौशल के साथ उपयोग किया गया था। इसका सबसे प्रसिद्ध परिणाम मोहनजोदड़ो की कांस्य 'नर्तकी' है। यह चार इंच ऊँची एक आकृति है, जिसकी आत्मविश्वासी मुद्रा, कमर पर हाथ और लयबद्ध ऊर्जा जीवन शक्ति का एक आकर्षक एहसास कराती है। अपने छोटे आकार के बावजूद, यह आकृति गतिशीलता और आत्मविश्वास व्यक्त करती है। ये ऐसे गुण हैं, जिन्होंने उसे हड़प्पा कलात्मकता का एक स्थायी प्रतीक बना दिया है। भैंस, बकरी और बैल जैसे अन्य कांस्य जानवर भी जीवंतता दिखाते हैं। उनकी शारीरिक ऊर्जा को

नर्तकी (मोहनजोदड़ो से प्राप्त कांस्य-निर्मित मूर्ति)

बड़ी संवेदनशीलता के साथ दर्शाया गया है। धातु ढलाई की यह परंपरा हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से परे, लोथल और कालीबंगा जैसे स्थलों तक फैली हुई थी, जहाँ कांस्य के जानवर और अनुष्ठान की वस्तुएँ मिली हैं। ये खोज न केवल कलात्मक प्रयोग का सुझाव देती हैं, बल्कि धातु-कार्य प्रथाओं की निरंतरता का भी संकेत देती हैं, जिसने उपमहाद्वीप में बाद की चालकोलिथिक (ताम्रपाषाण) संस्कृतियों को प्रभावित किया।

पत्थर या कांस्य की कलाकृतियों की तुलना में कम परिष्कृत, टेराकोटा की आकृतियाँ अत्यधिक सांस्कृतिक महत्व रखती हैं। सबसे प्रमुख आकृतियों में से हैं कई मातृ देवी की मूर्तियाँ, जिन्हें आम तौर पर चौड़े कूल्हों और उभरे हुए स्तनों जैसी अतिरंजित शारीरिक विशेषताओं के साथ दर्शाया गया है। ये प्रजनन और पोषण शक्तियों का प्रतीक हैं। ये आकृतियाँ अकसर हार और विशिष्ट पंखे के आकार के सिर के आभूषणों से सजी होती थीं। उनके सरलीकृत रूप प्राकृतिक के बजाय प्रतीकात्मक शैली को दर्शाते हैं। पुरुष आकृतियाँ, अकसर दाढ़ी वाली और सीधी मुद्रा में खड़ी होती थीं, जिनकी देवताओं के प्रतिनिधित्व के रूप में व्याख्या की जाती है। इसके

अतिरिक्त, टेराकोटा के मुखौटे, जैसे कि सींग वाले देवता का, हड़प्पा की धार्मिक कल्पना के प्रदर्शनों का विस्तार करते हैं। इन धार्मिक वस्तुओं के साथ-साथ, टेराकोटा से उपयोगी और मनोरंजक वस्तुएँ भी बनायी गईं। उदाहरण के लिए, पहियों वाली खिलौना गाड़ियाँ, सीटियाँ, खड़खड़ियाँ और जानवरों की लघु आकृतियाँ। ऐसी खोजें न केवल धार्मिक प्रथाओं वाले समाज का संकेत देती हैं, बल्कि एक ऐसे समाज का भी, जो अपने लोगों, विशेषकर बच्चों की मनोरंजक जरूरतों पर ध्यान देता था।

सिंधु घाटी सभ्यता के सबसे विशिष्ट योगदानों में से एक मुहरों के उल्लेखनीय संग्रह से उस काल की कला का वैभव ज्ञात करते हैं। हजारों की संख्या में पायी गईं ये छोटी वस्तुएँ, आम तौर पर चौकोर और स्टीटाइट से तराशी गई, व्यापार, प्रशासन और शायद अनुष्ठानों में उपयोग की जाती थीं। प्रत्येक मुहर पर एक चित्र होता है, आम तौर पर एक जानवर का। कभी-कभी पौराणिक जीवों या मानव आकृतियों का चित्र भी होता है, जिसे अनसुलझी हड़प्पा लिपि के साथ देखा जाता है, जो उस काल की कला का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

पशुपतिनाथ मुहर

इन विभिन्न प्रकार की कलात्मक कृतियों को एक साथ देखने पर सिंधु घाटी की रचनात्मकता की व्यापकता स्पष्ट होती है। पत्थर की मूर्तियाँ गंभीरता और अधिकार व्यक्त करती हैं। कांस्य की वस्तुएँ गतिशीलता और जीवन-शक्ति को दर्शाती हैं। टेराकोटा की आकृतियाँ धार्मिक भक्ति और घरेलू खेल को दर्शाती हैं। मुहरें पहचान, वाणिज्य और विश्वास के प्रतीक के रूप में खड़ी हैं। और मिट्टी के बर्तन कार्यात्मक डिजाइन और सजावटी प्रयोग, दोनों को दर्शाते हैं। अपनी कला के माध्यम से, सिंधु घाटी के लोगों ने प्राकृतिक दुनिया, अपने देवताओं, अपने समुदाय और व्यवस्था और सौंदर्य की अपनी भावना के साथ अपने संबंधों को व्यक्त किया।

वेदों में कला का उल्लेख अनेक रूपों में मिलता है। ऋग्वेद में 'चित्र' और 'रचना' शब्द आते हैं, जो रूप-सौंदर्य और अलंकरण की ओर संकेत करते हैं। देवताओं की स्तुति में काव्य और संगीतात्मक छंद का प्रयोग हुआ है। सामवेद को संगीत का वेद कहा जाता है। इसमें मंत्रों को गाने की सामगान पद्धति बतायी गई है तथा वीणा, वंशी और डमरू जैसे वाद्यों का उल्लेख मिलता है, जिन्हें भारतीय शास्त्रीय संगीत की जड़ माना गया है। यजुर्वेद में यज्ञों के लिए नृत्य-गान, मुद्राएँ और वेदियों की कलात्मक रचना का उल्लेख है, जिससे नृत्य और नाट्य की प्रारंभिक परंपरा का संकेत मिलता है। अथर्ववेद में 'शिल्प' और 'वास्तु' का उल्लेख मिलता है, जिसमें घर बनाने, वस्त्र-अलंकरण, गहनों और औजारों की कलात्मकता के साथ-साथ औषधियों और प्रकृति के सुंदर चित्रण का वर्णन मिलता है।

चित्रकला के संदर्भ में ऋग्वेद में 'चित्र' शब्द का अनेक स्थानों पर उल्लेख है, जैसे—'चित्रं वर्त्म' (सुंदर मार्ग), 'चित्रं दिवम्' (सुंदर आकाश)। उषा का वर्णन लाल वस्त्रों और आभा से सजी हुई स्त्री के रूप में किया गया है, जो चित्रात्मक कला का उत्तम उदाहरण है। देवताओं और प्रकृति का सौंदर्य 'रंगों' और 'चित्रण' के माध्यम से प्रकट होता है। ऋग्वेद में बार-बार प्रयुक्त 'हरित' (हरा), 'अर्पित' (लाल/पीला) और 'श्याम' (नीला/काला) जैसे शब्द रंग-ज्ञान और दृश्य सौंदर्य की गहरी समझ को व्यक्त करते हैं। नदियों, पर्वतों और आकाश के चित्रात्मक वर्णन से प्राकृतिक दृश्य और मानवीकरण की परंपरा का संकेत मिलता है। देवताओं को प्रतीकात्मक रूपों में दर्शाना—जैसे अग्नि की ज्वालाएँ, इंद्र की शक्ति और वरुण की दृष्टि—कल्पना और प्रतीकात्मकता को मूर्त रूप देता है। चित्रकला का उद्देश्य केवल सौंदर्य न होकर आध्यात्मिक साधना भी था, जिसके माध्यम से साधक प्रकृति और देवत्व से जुड़ता था। मूर्तिकला का उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद में मिलता है। इनमें 'प्रतिमा' और 'प्रतीक' जैसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यद्यपि, वेद मुख्यतः निर्गुण उपासना की ओर झुकते हैं, परंतु देवताओं का मानवीकरण भी मिलता है—जैसे इंद्र की विशाल भुजाएँ, अग्नि की ज्वालामयी आकृति और वरुण की दृष्टि। 'हस्तशिल्प' और 'आयस' (धातु) शब्द मूर्तिकला और धातु-कला की ओर संकेत करते हैं। हथियार, औजार और यज्ञ-पात्र धातु और लकड़ी से बनाए जाते थे। गहनों, अलंकरण और शृंगार का उल्लेख दर्शाता है कि प्रतिमाओं को भी सजाने की परंपरा थी। यद्यपि, मूर्तियों को वेदों में पूजा का अनिवार्य साधन नहीं माना गया, परंतु प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से देवत्व की अनुभूति करायी गई। यही विचार आगे चलकर प्रतिमा-पूजन और मूर्तिकला की धार्मिक धारा बना। स्थापत्य कला

का विस्तृत उल्लेख यजुर्वेद और अथर्ववेद में मिलता है। यज्ञ-स्थलों और वेदियों की विविध आकृतियाँ—चतुर्भुज, वृत्ताकार, गरुड़ाकार और बाजाकार—स्थापत्य कौशल के उत्तम उदाहरण हैं। अथर्ववेद में गृह-निर्माण, खंभे, द्वार और आँगन का वर्णन है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि घर केवल निवास न होकर पवित्र स्थल भी माने जाते थे। यजुर्वेद में यज्ञ-मंडप, वेदियाँ और वेधशलाएँ धार्मिक स्थापत्य की नींव को दर्शाती हैं। नगर-योजना की दृष्टि से जलाशयों, मार्गों और 'पुर' (गढ़वाले नगर) का उल्लेख मिलता है, जो किलेबंदी और नगर-व्यवस्था की प्रारंभिक झलक प्रस्तुत करता है। स्थापत्य कला केवल व्यावहारिक न होकर धार्मिक और सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग थी। घर, वेदियाँ और नगर—सभी को पवित्र स्थल मानकर उनका निर्माण किया जाता था।

भारतीय चित्रकला का स्वर्णयुग अजंता की गुफाओं से प्रारंभ होता है। यह गुफाएँ दूसरी शताब्दी ईसा-पूर्व से लेकर सातवीं शताब्दी ईसवी तक निर्मित और विकसित हुई। अजंता के भित्तिचित्र विश्वविख्यात हैं। इनमें बुद्ध के जीवन-प्रसंग, जातक कथाएँ और तत्कालीन समाज का अद्भुत चित्रण है। गुफा संख्या 1 और 2 में बोधिसत्व पद्मपाणि और अवलोकितेश्वर के चित्र विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। गुफा संख्या 16 और 17 में बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं, जैसे महाजनक जातक, हंस जातक, सुतसोम जातक आदि के चित्रण मिलते हैं। इन चित्रों में करुणा, त्याग, भक्ति और मानवता के आदर्श जीवंत रूप में प्रकट होते हैं। चित्रण की शैली अत्यंत परिष्कृत है। आकृतियाँ लयात्मक, भावपूर्ण और अनुपात में संतुलित हैं। रंगों का प्रयोग प्राकृतिक होने के बावजूद अद्भुत सौंदर्य उत्पन्न करता है। चेहरे के भाव, आँखों की गहराई और वस्त्रों की बारीकी आज भी दर्शकों को आकर्षित करती है।

बोधिसत्व पद्मपाणि : अजंता गुफा

अजंता की मूर्तिकला भी उतनी ही उत्कृष्ट है। गुफा संख्या 26 में 'मारविजय' की मूर्ति अत्यंत प्रसिद्ध है, जिसमें बुद्ध को 'मार' पर विजय प्राप्त करते हुए दिखाया गया है। इसी गुफा में लगभग सात मीटर लंबी लेटी हुई बुद्ध प्रतिमा भी है, जो निर्वाण की स्थिति का प्रतीक है। अन्य मूर्तियों में बुद्ध, बोधिसत्व और विभिन्न धार्मिक दृश्य अद्वितीय नक्काशी और भावाभिव्यक्ति के साथ गढ़े गए हैं। अजंता की चैत्य गुफाओं में स्तूप और स्तंभों की भव्यता है, जबकि विहार गुफाओं में भिक्षुओं के रहने और ध्यान करने की व्यवस्था की गई थी। चैत्य हॉलों की दीवारें और प्रवेश-द्वार चित्रों और मूर्तियों से अलंकृत हैं, जिससे धर्म और कला का अद्वितीय संगम दृष्टिगोचर होता है। अजंता की कला केवल धार्मिक कथाओं का चित्रण नहीं है, बल्कि तत्कालीन समाज की जीवन-शैली, वेशभूषा, आभूषण, रीति-रिवाज और संस्कृति का भी जीवंत दस्तावेज है। इन गुफाओं की कला आज यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल के रूप में संरक्षित है और भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का प्रतीक मानी जाती है।

भारतीय कला की यह धारा—प्रागैतिहासिक शैलचित्रों से लेकर सिंधु घाटी की कलाकृतियों और अजंता के भित्तिचित्रों तक—मानव जीवन, विश्वासों और सांस्कृतिक मूल्यों का सशक्त दर्पण है। प्रागैतिहासिक गुफा चित्र केवल शिकार और जीव-जगत का चित्रण नहीं हैं, बल्कि वे मानव की संवेदनशीलता, प्रकृति के प्रति सम्मान और सामूहिक जीवन की झलक देते हैं। इनमें निहित प्रतीकात्मकता यह बताती है कि प्रारंभिक मनुष्य केवल जीविका तक सीमित नहीं था, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी गहराई से जुड़ा हुआ था। सिंधु घाटी सभ्यता की कला उसकी उन्नत शहरी संस्कृति, तकनीकी कौशल और धार्मिक जीवन का प्रमाण है। मूर्तियाँ, कांस्य प्रतिमाएँ, टेराकोटा, मुहरें और मिट्टी के बर्तन—सभी मिलकर इस सभ्यता के सौंदर्यबोध और व्यावहारिकता को प्रकट करते हैं। यह कला भारतीय उपमहाद्वीप में कलात्मक परंपराओं की ठोस नींव रखने वाली मानी जाती है। वेदों में कला का उल्लेख केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन-दर्शन और आध्यात्मिक साधना से जुड़ा हुआ है। चित्रकला के माध्यम से रंग और प्रकृति का ज्ञान, मूर्तिकला के माध्यम से प्रतिमा और शिल्प की चेतना तथा स्थापत्य कला के माध्यम से यज्ञ-वेदी, गृह-निर्माण और नगर-योजना की परंपरा विकसित हुई। वेदों में कला का महत्व यह दर्शाता है कि भारतीय संस्कृति ने प्रारंभ से ही कला को साधना, धर्म और जीवन के समन्वय का माध्यम माना। यही कारण है कि वेदों की कला-परंपरा आगे चलकर भारतीय शास्त्रीय संगीत, नृत्य, नाट्य, मूर्तिकला और स्थापत्य का आधार बनी। अजंता की कला भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला का शिखर है, जिसने बौद्ध धर्म की करुणा, त्याग और मानवीय आदर्शों को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया। यहाँ के भित्तिचित्र न केवल धार्मिक कथाओं का चित्रण हैं, बल्कि तत्कालीन समाज, संस्कृति और जीवन-मूल्यों का दर्पण भी हैं। यही कारण है कि अजंता आज भी भारत की अमर कला धरोहर के रूप में विश्वभर में प्रसिद्ध है। इन विभिन्न कला धाराओं के अध्ययन के पश्चात हमें भारतीय कला परंपरा के चरमोत्कर्ष का क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होता है।

ज्ञान भारतम्
धरोहर से डिजिटल युग तक, भारत की ज्ञान परंपरा का पुनर्जागरण

भारत की ज्ञान परंपरा में निहित प्राचीन पांडुलिपियाँ केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि विज्ञान, चिकित्सा, खगोल, गणित, कला और जीवन विज्ञान की अमूल्य धरोहर हैं। इन्हें सुरक्षित कर शोध, शिक्षा और नवाचार की दिशा में नई संभावनाएँ खोली जा रही हैं। संस्कृति मंत्रालय का 'ज्ञान भारतम्' मिशन इन्हें डिजिटल रूप देकर आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने का ऐतिहासिक प्रयास है। ए.आई. आधारित अनुवाद, वैश्विक सहयोग, जनभागीदारी और आधुनिक शोध संस्थानों के समन्वय से यह पहल भारत को ज्ञान, विज्ञान और

तकनीक में विश्वगुरु बनाने की दिशा में निर्णायक कदम साबित होगी।

भारत अपनी प्राचीन ज्ञान परंपरा के लिए पूरे विश्व में विशेष पहचान रखता है। वेदों से लेकर आयुर्वेद, गणित से खगोलशास्त्र, वास्तु से दर्शन, साहित्य से शासन तक, हजारों वर्षों की यह ज्ञान संपदा भारतीय समाज की बौद्धिक धरोहर का प्रतिनिधित्व करती है, किंतु समय के साथ अनेक ग्रंथ नष्ट होने के कगार पर पहुँच गए, जबकि कई पांडुलिपियाँ धूल-धूसरित होकर विभिन्न संस्थानों, निजी संग्रहों और आश्रमों में बिखरी पड़ी हैं। इन्हीं चुनौतियों का समाधान करते हुए भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने 'ज्ञान भारतम्' मिशन की शुरुआत की है, जिसका उद्देश्य इन अमूल्य पांडुलिपियों को डिजिटल रूप में सुरक्षित करना, उनके ज्ञान को शोधकर्ताओं और आम जनता तक पहुँचाना तथा भारत की ज्ञान परंपरा को वैश्विक स्तर पर पुनर्स्थापित करना है।

प्राचीन पांडुलिपियों की आवश्यकता और उत्पत्ति

भारतीय सभ्यता में ज्ञान का संरक्षण मौखिक परंपरा से शुरू हुआ। ऋग्वेद, जिसे दिव्य ज्ञान का स्रोत माना जाता है, प्रारंभ में ऋषियों द्वारा श्रुति परंपरा में संरक्षित रखा गया। युगों तक मंत्रों का स्मरण कर उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी पहुँचाया गया, लेकिन समय के साथ स्मरण में कठिनाइयाँ आने लगीं और ज्ञान को लिपिबद्ध करने की आवश्यकता महसूस हुई। धीरे-धीरे ध्वनि प्रतीकों को आड़े-तिरछे

योगेश कुमार गोयल

संप्रति : जून 1990 से साहित्य एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में निरंतर सक्रिय।

प्रकाशन : देश के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में समसामयिक, सामरिक, पर्यावरण व सामाजिक विषयों पर 13 हजार से अधिक लेख प्रकाशित। अब तक छह पुस्तकें, जिनमें से एक हिंदी अकादमी दिल्ली और दो हरियाणा साहित्य अकादमी से प्रकाशित हैं।

संपर्क : मोबाइल– 94167405848
ईमेल– mediacaregroup@gmail.com

चिह्नों में बदलकर लेखन-प्रणाली विकसित हुई। प्रारंभिक ग्रंथ पत्थरों पर अंकित किये गए, बाद में भोजपत्र, ताड़पत्र, कपड़े और अंततः कागज पर लेखन की परंपरा विकसित हुई। लिपि के साथ जुड़ा 'पांडु' शब्द उस माध्यम को दर्शाता है, जिस पर लिपि लिखी जाती थी। जिस पत्र, ताड़पत्र, भोजपत्र या कागज पर लिपि अंकित होती, उसे 'पांडु' कहा गया और उस पर लिखे ग्रंथ को पांडुलिपि। इन पांडुलिपियों में न केवल धार्मिक ग्रंथ, बल्कि चिकित्सा, कृषि, दर्शन, योग, खगोल, गणित, शिल्प, कला, संगीत, नीति, इतिहास, भाषा शास्त्र जैसे विविध विषयों का ज्ञान समाहित है। भारत में एक करोड़ से अधिक पांडुलिपियाँ विभिन्न भाषाओं और लिपियों में मौजूद मानी जाती हैं। वाराणसी के संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय में ही एक लाख से अधिक दुर्लभ पांडुलिपियाँ संरक्षित हैं। इनमें व्याकरण, साहित्य, दर्शन, आयुर्वेद, खगोल, तंत्र, मंत्र आदि विषयों पर ग्रंथ शामिल हैं। इनके संरक्षण और डिजिटलीकरण की दिशा में प्रयास अब निर्णायक रूप ले चुके हैं।

संरक्षण की दिशा में ऐतिहासिक प्रयास

भारत में पांडुलिपियों को संकलित और संरक्षित करने का प्रयास अटल बिहारी वाजपेयी सरकार के समय 'नेशनल मैन्युस्क्रिप्ट मिशन' के तहत शुरू हुआ था। विभिन्न संस्थानों और निजी संग्रहों से पांडुलिपियों को एकत्र कर उनके संरक्षण का प्रयास किया गया। संसाधनों की कमी के बावजूद यह कार्य सीमित स्तर पर जारी रहा। वर्तमान सरकार ने इसे मिशन मोड में लेते हुए 'ज्ञान भारतम्' पोर्टल के माध्यम से संगठित ढंग से कार्य प्रारंभ किया। संस्कृति मंत्रालय के नेतृत्व में पांडुलिपियों की पहचान, डिजिटल रूपांतरण और जनसुलभता को प्राथमिकता दी जा रही है। माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 12 सितंबर, 2025 को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान 'ज्ञान भारतम् पोर्टल' का शुभारंभ किया। यह मंच भारत की ज्ञान परंपरा को सुरक्षित करने, शोध को बढ़ावा देने और वैश्विक साझेदारी को मजबूत करने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है।

डिजिटलीकरण की प्रक्रिया : सावधानी और तकनीकी नवाचार

प्राचीन पांडुलिपियाँ प्रायः अत्यंत जीर्ण-शीर्ण अवस्था में होती हैं। इन पर समय और वातावरण का असर स्पष्ट दिखता है। इसलिए संरक्षण का कार्य अत्यंत सावधानी से करना आवश्यक है। संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय जैसे संस्थानों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। यहाँ लगभग 85,000 फोलियोज का संरक्षण किया गया है और 900 से अधिक पांडुलिपियों का डिजिटल रूपांतरण किया गया है। संरक्षण कार्य में प्रशिक्षित कर्मियों द्वारा विशेष तकनीकों का प्रयोग किया जाता है, ताकि मूल पांडुलिपियों को क्षति न पहुँचे। डिजिटलीकरण के दौरान उच्च गुणवत्ता वाले स्कैनर, विशेष प्रकाश व्यवस्था, नियंत्रित तापमान, आर्द्रता नियंत्रण और डेटा बैकअप जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है। समय-समय पर प्रशिक्षित टीमों को आधुनिक उपकरणों और संरक्षण विज्ञान का प्रशिक्षण दिया जाता है, ताकि कार्य कुशलता और वैज्ञानिक दृष्टि से आगे बढ़े।

ए.आई. आधारित पहुँच और शोध का विस्तार

डिजिटलीकृत पांडुलिपियों को आम जनता तक तुरंत उपलब्ध कर देना संभव नहीं है। इसकी प्रमुख वजह यह है कि ये ग्रंथ 27 विभिन्न लिपियों में हैं, जैसे—शारदा, ब्राह्मी, गुरुमुखी, उर्दू, अरबी, फारसी, कन्नड़, ओड़िया, मराठी, गुजराती, तेलुगू, तमिल, असमिया आदि। इन ग्रंथों का अध्ययन, अनुवाद और व्याख्या कर उन्हें आधुनिक भाषाओं में उपलब्ध कराना आवश्यक है। ज्ञान भारतम् पोर्टल पर ए.आई. आधारित खोज और अनुवाद सुविधाएँ विकसित की जा रही हैं। इससे शोधकर्ता लिपियों की पहचान कर सकते हैं, सामग्री का विश्लेषण कर सकते हैं और अनुवाद की दिशा में मदद प्राप्त कर सकते हैं। यह पहल न केवल पारंपरिक शोधकर्ताओं, बल्कि विद्यार्थियों, शिक्षकों, सांस्कृतिक संस्थानों और नीति-निर्माताओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।

शिक्षा नीति 2020 और ज्ञान परंपरा का समन्वय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी 2020) में भारतीय ज्ञान परंपरा को शिक्षा से जोड़ने की बात कही गई है। ज्ञान भारतम् मिशन इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। डिजिटलीकृत पांडुलिपियों का अध्ययन और उनके आधार पर आधुनिक पाठ्यक्रम तैयार किए जा सकते हैं। चिकित्सा, योग, आयुर्वेद, पर्यावरण विज्ञान, गणित, भाषा अध्ययन और दर्शन जैसे क्षेत्रों में यह धरोहर नई पीढ़ी को भारत की बौद्धिक परंपरा से जोड़ने का सेतु बनेगी। शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों में इन पांडुलिपियों पर आधारित विशेष पाठ्यक्रम विकसित किए जा सकते हैं। साथ ही, नई पीढ़ी को प्रशिक्षण देकर संरक्षण कार्य में भागीदारी के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

वैश्विक साझेदारी और ज्ञान की घर वापसी

भारत का प्राचीन ज्ञान केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा। ऐतिहासिक रूप से कई ग्रंथ विदेशों में चले गए। उदाहरणस्वरूप, गुप्त काल में फाह्यान और ह्वेनत्साँग जैसे चीनी यात्रियों ने भारत से बौद्ध ग्रंथ ले जाकर अपने देशों में अनुवाद कर लिये। आज चीन में ये ग्रंथ चाइनीज भाषा में उपलब्ध हैं। ऐसे ग्रंथों को वापस लाकर पालि और संस्कृत में पुनः प्रकाशित करना भारत की सांस्कृतिक पुनरुद्धार यात्रा का महत्वपूर्ण भाग है। ज्ञान भारतम् मिशन में वैश्विक सहयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है, ताकि तकनीकी नवाचार, संरक्षण विज्ञान और

अनुवाद में परस्पर आदान-प्रदान हो। इससे भारत अपने ज्ञान को विश्व स्तर पर साझा कर सकेगा और वैज्ञानिक शोध में भी अग्रणी भूमिका निभा सकेगा।

"भारत की प्राचीन पांडुलिपियाँ केवल इतिहास का दस्तावेज नही हैं, बल्कि वे हमारी सभ्यता की आत्मा हैं। उनमें निहित ज्ञान आने वाली पीढ़ियों को शिक्षा, विज्ञान, स्वास्थ्य, पर्यावरण, दर्शन और संस्कृति के नए आयाम प्रदान कर सकता है। माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा प्रारंभ किया गया 'ज्ञान भारतम्' मिशन इस दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है। यह मिशन प्राचीनता और आधुनिकता के बीच सेतु बनेगा, विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय करेगा, शोध और नवाचार को प्रोत्साहित करेगा, वैश्विक सहयोग को बढ़ावा देगा और भारत की सांस्कृतिक धरोहर को विश्व मंच पर पुनः प्रतिष्ठित करेगा।"

विज्ञान और नवाचार में योगदान

प्राचीन पांडुलिपियों में विज्ञान से जुड़ी अनेक विधाओं का उल्लेख मिलता है, यथा—आयुर्वेदिक चिकित्सा, खगोल विज्ञान, गणितीय गणना, जल प्रबंधन, वास्तु विज्ञान, धातु विज्ञान आदि। आज की वैज्ञानिक खोजों को प्राचीन ज्ञान के आधार पर नए आयाम दिए जा सकते हैं। उदाहरणस्वरूप, औषधीय पौधों पर आधारित आयुर्वेदिक उपचारों का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में उपयोग, प्राचीन खगोल गणनाओं के आधार पर अंतरिक्ष अध्ययन, जल संरक्षण की तकनीकों से पर्यावरण प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में नवाचार संभव हैं। डिजिटलीकरण के माध्यम से इन ग्रंथों का विश्लेषण कर वैज्ञानिक शोध को नया आधार दिया जा सकता है। साथ ही, यह पहल 'विज्ञान और परंपरा' के बीच पुल बनाकर भारत को ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की दिशा में आगे ले जाएगी।

आम जनता की भागीदारी

ज्ञान भारतम् मिशन केवल सरकारी प्रयास नहीं है, बल्कि इसमें नागरिकों की सक्रिय भागीदारी भी आवश्यक है। आम लोग अपने घरों में संरक्षित पांडुलिपियों का दस्तावेजीकरण कर सकते हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर उन्हें साझा करने की सुविधा दी जा रही है। इससे न केवल धरोहर का संरक्षण होगा, बल्कि आम लोगों में सांस्कृतिक चेतना और जिम्मेदारी का भाव भी जागृत होगा। साथ ही, विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों, संग्रहालयों, मंदिरों, मठों, धार्मिक संगठनों और गैर-सरकारी संस्थाओं के सहयोग से व्यापक नेटवर्क विकसित किया जा सकता है, जो संरक्षण कार्य को वैज्ञानिक और व्यवस्थित दिशा प्रदान करेगा।

विकसित भारत @ 2047 ज्ञान की रीढ़

भारत सरकार का लक्ष्य 'विकसित भारत @ 2047' है, जिसमें सांस्कृतिक विरासत को आधार बनाकर आधुनिकता की ओर बढ़ना है। ज्ञान भारतम् मिशन इस लक्ष्य में केंद्रीय भूमिका निभा सकता है। प्राचीन ग्रंथों से प्राप्त ज्ञान न केवल सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक होगा, बल्कि शिक्षा, शोध, स्वास्थ्य, पर्यावरण और विज्ञान में नए नवाचारों का मार्ग भी प्रशस्त करेगा। यह पहल भारत की पहचान को 'ज्ञान की वैश्विक राजधानी' के रूप में स्थापित कर सकती है। साथ ही, यह वैश्विक सहयोग, नवाचार, स्टार्टअप इकोसिस्टम और बौद्धिक संपदा के क्षेत्र में नए अवसर प्रदान कर सकती है।

भविष्य की दिशा

ज्ञान भारतम् मिशन आगे चलकर कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव डाल सकता है, जिनमें सभी भाषाओं, विषयों और लिपियों में उपलब्ध सामग्री को केंद्रीकृत कर विश्वस्तरीय डिजिटल संग्रहालय विकसित करना (डिजिटल लाइब्रेरी का विस्तार), पांडुलिपियों के अध्ययन और शोध को बढ़ावा देने के लिए विशेष वित्तीय सहायता (अनुसंधान अनुदान और फैलोशिप), शोधकर्ताओं और छात्रों के लिए सहज और वैज्ञानिक अनुवाद प्लेटफॉर्म (ए.आई. आधारित अनुवाद उपकरण), विद्यालयों, महाविद्यालयों और समुदायों में सांस्कृतिक संरक्षण की जागरूकता (लोक सहभागिता अभियान), संरक्षण तकनीक, डिजिटल आर्काइविंग और ज्ञान साझा करने में साझेदारी (अंतरराष्ट्रीय सहयोग मंच), संरक्षण विज्ञान, डिजिटल उपकरणों और शोध पद्धतियों में विशेषज्ञता विकसित करना (प्रशिक्षण केंद्र) इत्यादि प्रमुख हैं।

बहरहाल, भारत की प्राचीन पांडुलिपियाँ केवल इतिहास का दस्तावेज नहीं हैं, बल्कि वे हमारी सभ्यता की आत्मा हैं। उनमें निहित ज्ञान आने वाली पीढ़ियों को शिक्षा, विज्ञान, स्वास्थ्य, पर्यावरण, दर्शन और संस्कृति के नए आयाम प्रदान कर सकता है। माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा प्रारंभ किया गया 'ज्ञान भारतम्' मिशन इस दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है। यह मिशन प्राचीनता और आधुनिकता के बीच सेतु बनेगा, विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय करेगा, शोध और नवाचार को प्रोत्साहित करेगा, वैश्विक सहयोग को बढ़ावा देगा और भारत की सांस्कृतिक धरोहर को विश्व मंच पर पुनः प्रतिष्ठित करेगा। विकसित भारत @ 2047 की यात्रा में यह मिशन न केवल प्रेरणा का स्रोत होगा, बल्कि ज्ञान आधारित विकास की आधारशिला भी सिद्ध होगा। भारत की ज्ञान परंपरा अब सुरक्षित है, डिजिटलीकृत है और दुनिया के सामने आने के लिए तैयार है। यह समय है जब अतीत की अमूल्य धरोहर भविष्य की वैज्ञानिक प्रगति का आधार बने और भारत फिर से ज्ञान, विज्ञान और नवाचार में विश्वगुरु के रूप में स्थापित हो।

समय जब ठहर जाए...

कोई मनुष्य कितना प्रिय हो सकता है, जीते जी इसका सही अंदाजा लगाना कठिन होता है। अपने जीवन काल में कई महानुभावों को इस संसार का मोह त्याग करते हुए हम सबने देखा है, उनकी अंतिम यात्रा में बड़ी भीड़ हमने देखी है। इस सदी में दो ऐसे महान व्यक्तियों के निधन का अनुभव असम के लोगों को हुआ है, जिन्होंने लोकप्रियता की सारी सीमाएँ पार कर ली थीं और उसी की अभिव्यक्ति उनकी अंतिम यात्रा के दौरान देखने को मिली। इनमें से पहला नाम है—भारत रत्न से सम्मानित डॉ. भूपेन हाजरिका (1926-2011) और दूसरा नाम जुबिन गार्ग (1972-2025) का है।

डॉ. रीतामणि वैश्य

असम के गुवाहाटी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की विभागाध्यक्ष डॉ. रीतामणि वैश्य प्रतिष्ठित कथाकार और अनुवादक (हिंदी से असमिया, और असमिया से हिंदी) हैं। उनकी 'मेघना' (उपन्यास), 'मृगतृष्णा' (कहानी-संकलन) 'मणिपुर : एक प्रेम कथा', 'रूयाता मिज़ो का घर', 'शिएनथुक : द ओकलैंड' आदि कहानियों के अतिरिक्त, 'असम की जनजातियों का लोकपक्ष एवं कहानियाँ', 'भूपेन हाजरिका : जीवन और गीत', शंकरदेव के नाट' इत्यादि पुस्तकें प्रकाशित हई हैं।

संपर्क : मोबाइल— 9435116133

ईमेल— ritamonibaishya841@gmail.com

19 सितंबर, 2025 की शाम को असम के महालेखा कार्यालय में हिंदी पखवाड़े के कार्यक्रम में भाग लेने के लिए मुझे बुलाया गया था। तीन बजे कार्यक्रम शुरू होने ही वाला था और तभी यह दुखद समाचार आया कि सिंगापुर में असम के प्राण जुबिन गार्ग का निधन हो गया है। इस खबर की आधिकारिक पुष्टि होते ही हिंदी पखवाड़ा का कार्यक्रम तुरंत शोक सभा में बदल गया। बहुत संभव है कि जुबिन गार्ग के निधन की पहली शोक सभा यही रही होगी। बतौर मुख्य वक्ता मैं वहाँ गई थी, तो मुझे जुबिन गार्ग को श्रद्धांजलि देने का अवसर मिला। तभी जुबिन गार्ग के साथ हिंदी का एक संदर्भ मुझे याद आया और मैंने उसी का उल्लेख करना ठीक समझा। एक बार रङाली बिहु के सांस्कृतिक कार्यक्रम में जुबिन गार्ग को आयोजक की तरफ से हिंदी गाना गाने से मना किया गया था। तब जुबिन गार्ग ने आयोजकों की बात मानने से इनकार किया था। उनका कहना था कि संगीत में भाषा बाधा के रूप में नहीं आनी चाहिए। इस घटना के बाद जुबिन के पक्ष-विपक्ष में बहुत सारी बातें हुईं, पर जुबिन अपने पक्ष के साथ मजबूती से खड़े रहे।

जुबिन गार्ग असमिया लोगों के हृदय के स्पंदन रहे हैं। उनसे बड़े उन्हें 'जुबिन' और उनसे छोटे उन्हें 'जुबिन दा' कहकर पुकारते थे। जुबिन दा के न होने की खबर को आज असम के लोगों ने अस्वीकार किया है। जुबिन दा के बिना असम की कल्पना आज किसी से नहीं हो पा रही है। जुबिन दा आदत से मस्तमौला थे। उनकी अपनी दुनिया थी, उस दुनिया में किसी का वश नहीं चलता था। जुबिन दा ने कहा था कि जीवन को उत्पात की जरूरत होती है। और इसी उत्पात के चलते ही वे हमारे बीच से चले गए। सिंगापुर में आयोजित होने वाले 'नॉर्थ ईस्ट

फेस्टिवल' में भाग लेने के लिए वे गए थे। 18 तारीख, 2025 की रात को उन्होंने किसी आयोजन में एरिक क्लेपटॉन का 'Tears in Heaven' गीत मस्ती से गाया था—

'Would you know my name
If I saw you in heaven?
Would it be the same
If I saw you in heaven?'

सुबह अपने दोस्तों के साथ वे सागर में तैरने गए थे। उनकी पत्नी गरिमा शइकीया गार्ग छाया की तरह उनके साथ रहती हैं, पर इस बार भगवान को कुछ और ही मंजूर था। जुबिन दा को सीजर अटैक का खतरा था। शायद गरिमा होती तो उन्हें सँभाल लेती। अपनी राह खुद बनाने वाले अपनी मर्जी से जीने वाले जुबिन दा लाइफ जैकेट के बिना ही सागर में उतर गए थे। इसके कुछ समय बाद उन्हें सीजर अटैक आता है और वे सागर में डूबने लगते हैं। उनके दोस्तों को यह पता होने से पहले ही उनके शरीर में काफी पानी जा चुका था। जब तक उन्हें इलाज मिलता काफी देर हो चुकी थी और अंत में यह दुखद समाचार हम सबको मिला।

इस खबर के मिलते ही लोग पागल-से हो गए। लोग रास्ते पर निकल आए और देखते-ही-देखते रास्तों पर जन-सैलाब उमड़ पड़ा। असम के शहर-शहर, गली-गली रैलियाँ निकाली जाने लगीं। चौराहों पर जुबिन दा की फोटो पर धूप-दीये से श्रद्धांजलि देने का अनंत सिलसिला शुरू हुआ। रातों-रात लोग जुबिन दा के गुवाहाटी के काहिलीपारा के फ्लैट के लिए रवाना हुए। हम भी रात को बारह बजे के करीब काहिलीपारा पहुँच गए। सड़क पर भीड़ इतनी थी कि गाड़ी दूर रख पुलिस अधिकारियों की मदद से जुबिन के फ्लैट के नीचे पहुँचे। तब तक वहाँ करीब पचास-साठ हजार लोग इकट्ठे हो गए थे। सबकी आँखें भीगी थीं; कोई गा रहा था, कोई चिल्ला रहा था, कोई उनकी फोटो की पूजा कर रहा था। ऊपर से गरिमा बीच-बीच में उतर आती और हाथ जोड़कर सबको धीरज रखने का आग्रह करती। असम के मुख्यमंत्री श्री हिमंत बिस्वा सरमा बार-बार लोगों को संयमित रहने का अनुरोध करते नजर आए। 19 तारीख, 2025 की शाम से कई दिनों तक असम के घरों में चूल्हा नहीं जला। लोग दीवानों की तरह असम के कोने-कोने से एक बार जुबिन दा के दर्शन के लिए जैसे-तैसे गुवाहाटी पहुँचे। जुबिन दा ने एक बार कहा था कि उनकी मृत्यु होने पर उनका 'मायाबिनी' गीत बजते रहना चाहिए। असम के आसमान में, नदियों के पानी में, हवा में आज मायाबिनी की लहर है—

मायाबिनी रातिर बुकुत
देखा पालौँ तोमार छबि
धरा दिला गोपने आहि
हियार कोणत...
तुमि ये मोर शुकान मनत
नियररे चँचा टोपाल
नामि आहा रँदरे नै
मोर देहत प्रति पुवा
धुमुहार सँते मोर
बहु युगरे नाचोन
एंधारो सँचा मोर
बहु दिनरे आपोन
निजानर गान मोर
शेष हॅब
भाबौँ तोमार बुकुत।

अर्थात्,
मायाबी रात के सीने पर
देखी मैंने तुम्हारी छवि
तुम चुपके से आ गई
दिल के कोने में...
तुम मेरे सूखे मन में
ओस की ठंडी बूँद
उतर आती धूप की नदी
मेरे शरीर में हर सुबह
तूफान के साथ मैं
युगों से नाचता आया हूँ
अँधेरा भी मेरा
बहुत समय से अपना है
लगता है मेरे एकांत गीत का
अंत होगा
तुम्हारी छाती पर।

जुबिन दा की लोकप्रियता इस कदर है कि लोग खासकर युवा पीढ़ी उन्हें भगवान मानती है। जुबिन दा जो कहते थे, नई पीढ़ी के लिए वही अंतिम सत्य हुआ करता था। जुबिन दा 'कैब' (Citizenship Amendment Bill) का विरोध करते हुए आंदोलन में शामिल हुए थे। एक छात्र नेता भाषण देते हुए शंका जाहिर कर रहे थे कि आंदोलन के बाद भी अगर यह बिल पारित हो गया तो क्या होगा। जुबिन दा मंच पर उस नेता के पास खड़े थे। उन्होंने छात्र नेता का वाक्य खत्म होने से पहले ही माइक को अपनी ओर खींचकर घोषणा कर दी थी कि अगर ऐसा हुआ तो हम नया राजनीतिक दल बनाएँगे। और इसी घोषणा के बाद 'असम जातीय परिषद्' नाम से एक नये राजनीतिक दल का गठन असम में हुआ था।

जुबिन दा के गीत से हर असमिया का हृदय भरा हुआ है। उनके 'या अली' गीत से लता मंगेशकर भी प्रभावित हुई थीं। यद्यपि जुबिन दा बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार थे, फिर भी उनकी सफलता का मूलाधार उनके गीत हैं। उन्होंने कई भाषाओं में गीत गाए हैं। असमिया, हिंदी, अंग्रेजी, बाँग्ला, भोजपुरी आदि 40 भाषाओं में उनके

द्वारा गाये गए गीतों की कुल संख्या 38,000 हैं। एक ही रात में उन्होंने 36 गीतों की रिकार्डिंग का रिकॉर्ड भी बनाया था। उन्होंने सैकड़ों अमर गीतों से असमिया संगीत जगत को समृद्ध किया है।

सितंबर के 20 तारीख, 2025 की रात को ज़ुबिन दा का नश्वर शरीर सिंगापुर से दिल्ली पहुँचा। ज़ुबिन दा को लाने के लिए असम के मुख्यमंत्री श्री हिमंत बिस्वा सरमा स्वयं दिल्ली गए। उनके अंतिम संस्कार के लिए असम के अलग-अलग शहरों से भूमि दान का प्रस्ताव आया। कई विश्वविद्यालयों की ओर से सरकार को अपने परिसर में अंतिम संस्कार का अनुरोध किया गया।

मनुष्य जीते जी अपनी इच्छाओं को पूरा नहीं कर सकता और ज़ुबिन दा को स्वाभाविक मृत्यु नहीं मिली। उन्होंने 'प्रतिदिने तुमि आहि दिबा एपाहि फुल' (हर दिन तुम मुझे एक फूल देना) गीत में गाया था—

'आकाशे गाते लॅबरे मन
सागर तलित सुबरे मन
मनर चिला उरुवाइ जीवने
सोणाली है थाकक
तोमारे मोरे समय
बुकुवे बुकुवे रै याय
येन मधुमय।

अर्थात्,
आकाश को लपेट लेने का मन करता है
सागर की तह पर सोने का मन करता है
मन का पतंग जीवन उड़ाता है
सुनहला बना रहे तुम्हारा और मेरा समय
दिलों में रह जाए
केवल मधुमय।

क्या कोई ऐसे मृत्यु को गले लगाता है? कहते हैं मृत्यु के स्थान का पता केवल चरणों को ही होता है। क्या एक विशेष प्रकार की मृत्यु के लिए ही ज़ुबिन दा गरिमा को छोड़कर सिंगापुर गए थे? सागर की गोद में सोने की अद्भुत आकांक्षा रखने वाले ज़ुबिन दा सचमुच ही सागर की गोद में ही अंतिम निद्रा में चले गए।

ज़ुबिन दा के अंतिम संस्कार का दायित्व असम सरकार ने लिया। असम सरकार ने 20 से 22 सितंबर, 2025 तक राज्यभर में शोक की घोषणा कर दी। सारी दुकानें, बाजार, व्यवसाय स्वतःस्फूर्त रूप से बंद हो गए। सब कुछ छोड़कर ज़ुबिन दा की अंतिम यात्रा में लाखों लोगों की भीड़ ने भाग लिया। यह संख्या लगभग 15 लाख रही। इसी से दुनिया की सबसे बड़ी अंतिम यात्राओं में ज़ुबिन दा की यात्रा भी शामिल हो गई है। ज़ुबिन दा की अंतिम यात्रा को लिम्का बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स में दर्ज किया गया। माइकल जैक्सन, पोप फ्रांसिस और रानी एलिजाबेथ द्वितीय की अंतिम यात्राओं के बाद दुनिया में चौथा सबसे बड़ा जन-सैलाब ज़ुबिन दा के अंतिम यात्रा में शामिल हुआ।

ऐसा ही जन-सैलाब भूपेन हाजरिका के निधन के समय हमने देखा था। हमने जीवन में दो ऐसी महान जीवित किंवदंतियाँ देखीं। ज़ुबिन दा गायक होने के साथ-साथ गीतकार, संगीतकार, अभिनेता आदि भी थे। असमिया संगीत को एक अलग ही मुकाम तक ले जाने का काम ज़ुबिन दा ने किया था। असमिया संगीत जगत को समृद्ध करने की परंपरा में शंकरदेव और भूपेन हाजरिका के बाद ज़ुबिन गार्ग का नाम आता है।

ज़ुबिन दा केवल कलाकार ही नहीं थे, वे एक सहृदय व्यक्ति भी थे। ज़ुबिन दा थे तो बहुत बड़े कलाकार, पर छोटे-से-छोटे व्यक्तियों के साथ भी वे जुड़े रहते थे। सैकड़ों चेहरों में उनके कारण हँसी खिली थी। वे प्रकृति प्रेमी के रूप में जाने जाते हैं। गुवाहाटी के खारघुली में बन रहे उनके घर में उन्होंने बड़े-बड़े पेड़ लगाए हैं, ताकि पक्षी उसमें आराम से रह सकें। यह घर एक महीने के भीतर तैयार होने वाला था। ज़ुबिन दा को इस एक महीने का बड़ा इंतजार था, पर अब घर को ज़ुबिन दा का इंतजार करते रहना पड़ेगा और यह इंतजार कभी खत्म ही नहीं होगा।

मुझे ज़ुबिन दा की मृत्यु के अवसर पर लिखने का मन बिलकुल नहीं था। उनके लिए 'मृत्यु' शब्द मेरी कलम से बड़ी मुश्किल से निकला है और ज़ुबिन दा को शब्दों से बाँधा नहीं जा सकता। जितना भी लिख रही हूँ, लग रहा है सब अधूरा है। ज़ुबिन दा कहने या सुनने की कथा नहीं हैं; वे एक अनुभव का नाम हैं। जिसने ज़ुबिन दा को नहीं सुना, उनकी अंतिम यात्रा नहीं देखी, उसके के लिए उन्हें जानना या समझना असंभव है। असम के किसी भी एक न्यूज चैनल को खोलकर आप सब भी ज़ुबिन दा के शोक में डूबे असमिया समुदाय के हृदय की पीड़ा का अनुमान कर सकेंगे। असम का संगीत-सूर्य समुद्र में डूब चुका है, हवा बहना भूल गई है, ब्रह्मपुत्र भी ज़ुबिन दा की याद में अपनी गति खो बैठा है, प्रकृति निःशब्द आँसू बहा रही है, अब असम में समय ठहर गया है।

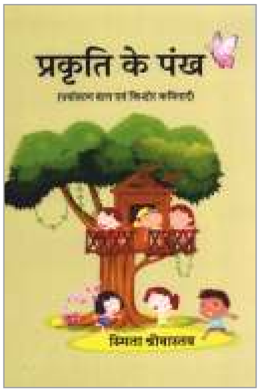

समीक्षक : **दिविक रमेश**

लेखक : **स्मिता श्रीवास्तव**

प्रकाशक : स्वतंत्र प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली

पृष्ठ : 79

मूल्य : रु. 299/-

प्रकृति के पंख

आज हिंदी बाल साहित्य में सूचना प्रधान और रचनात्मकता प्रधान बाल साहित्य लिखा जा रहा है। महत्व की दृष्टि से दोनों का अपने-अपने संदर्भ में महत्व है। सूचना प्रधान बाल साहित्य का प्रमुख उद्देश्य अपने पाठकों को किन्हीं विषयों के ज्ञान से समृद्ध करना प्रमुख होता है। रोचकता या ऐसे ही अन्य कारणों से इस ज्ञान को बाल साहित्य की रूप विधाओं, अर्थात् कविता, कहानी आदि रूपों में संयोजित कर प्रस्तुत किया जाता है। और यह सब, बहुत बार रचनात्मकता की कीमत पर भी कर लिया जाता है। इस प्रकार का साहित्य विषय-प्रधान होता है। दूसरी ओर, रचनात्मकता प्रधान बाल साहित्य में, हर हाल, रचनात्मकता सर्वोपरि होती है। इसका अर्थ है कि यहाँ विषय नहीं, विषयजन्य अनुभव की कलात्मक अभिव्यक्ति सर्वोपरि होती है। सार्थक कल्पना का भी समावेश होता है। इसीलिए मौलिकता भी सबसे ऊपर होती है।

जब मैंने प्रस्तुत समीक्ष्य पुस्तक 'प्रकृति के पंख' को पढ़ा तो बहुत संतोष हुआ कि पर्यावरण का उद्घोष करती ये रचनाएँ केवल पहले खाते अर्थात् विषय प्रधान साहित्य के खाते में डाल देने वाली नहीं हैं। भले ही कुछ रचनाएँ जरूर ऐसी हैं, जिनमें विषय सिखाने की उपदेशात्मक शैली हावी हो गई प्रतीत होती है, लेकिन इस संग्रह में ऐसी अनेक रचनाएँ भी हैं, जिनमें रचनात्मकता का सुखद निर्वाह हुआ है।

प्रस्तुत संग्रह में पर्यावरण के अनेक पक्षों, अंगों या सरोकार का स्पर्श किया गया है। सच तो यह है कि यहाँ पर्यावरण भरपूर रूप में है। पानी, फूल, कोयल, दूब, बादल, मोर, ऋतुएँ, इंद्रधनुष, सूरज, जुगनू, नीम, आम, बबूल, पीपल, बरगद, वृक्षारोपण, माटी के बर्तन, जूट का थैला, प्लास्टिक का विरोध आदि बहुत कुछ है। सोचना पड़ सकता है कि आखिर क्या नहीं है!

यह भी बताना जरूरी है कि रचनाकार ने, जहाँ चित्रण और प्रस्तुति में वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है, वहीं आस या उम्मीद को भी पकड़े रखा है, जो आज बाल साहित्य के लिए बहुत जरूरी है। 'प्रकृति की सीख' जैसी कविता में कथारस के प्रयोग को भी पिरो दिया गया है। उम्मीद की एक खूबसूरत बानगी 'प्रकृति की छाँव' कविता की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—नदियों की कल-कल, झरनों की धुन,/हर बूँद में बसी, बादल की रुनझुन।/पर्वत की ऊँचाई, बादलों का संग,/ प्रकृति की छाँव में बसी है नयी उमंग।/हरी-भरी वादियाँ, नीला आसमान,/प्रकृति की छाँव में, बसा है सारा जहान।

वैज्ञानिक दृष्टि वर्णन या कल्पना को उसके अतिरेक या ऊटपटाँग रूप से मुक्त रखकर विश्वसनीयता के दायरे में रखती है। पुस्तक के अंत में 'पर्यावरण संवाद' के अंतर्गत उचित ही लिखा गया है, "पेड़ों से हमें स्वादिष्ट फल, सुंदर फूल और साफ हवा मिलती है। गर्मियों में चिलचिलाती धूप से बचने के लिए आप पेड़ों की छाँव में बैठ सकते हैं और वर्षा में आप पेड़ों की शाखाओं के नीचे सुरक्षित रह सकते हैं। सर्दी की रातों में सूखी पत्तियों और टहनियों का अलाव भी जला सकते हैं। अनेक पशु-पक्षियों के आश्रयदाता विशाल पेड़ों की प्रत्येक पत्ती का ऊपरी हिस्सा सूरज की गर्मी को सोखकर उसे भोजन के रूप में पेड़ों को देने का कार्य करती है।" एक कविता है—'पेड़ देता है', जिसकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—सीखो तुम भी पेड़ बनना/हर मौसम में जी भर मुस्काना।

मेरी राय में, रचनात्मकता की दृष्टि से, इस संग्रह की उपलब्धि के रूप में जिन कविताओं को विशेष रूप से माना जाना सकता है, उनमें ये कविताएँ अवश्य सम्मिलित हैं—'बारिश और कश्ती', 'पानी रे पानी', 'प्रकृति की सीख', 'पेड़ का आधार कार्ड', 'प्रकृति की छाँव', 'मेरा गाँव', 'चिड़िया का घर', 'बारिश और छाता', 'यदि मैं बादल होता', 'गौरैया', 'हरी दूब', 'साइकिल और हरियाली', 'नन्हा बीज' आदि। विषय की उपयोगिता को ध्यान में रखा जाए तो कुछ और कविताओं को भी रेखांकित किया जा सकता है, जिनमें 'जूट का थैला', 'फूलों की खुशबू', 'चुग्गा दाना', 'नदियाँ हमारी धरोहर', 'पेड़ की चिट्ठी' आदि।

संतोष की बात यह भी है कि रचनाकार के पास अभिव्यक्ति के लिए सीधी और संप्रेषणीय भाषा है। कहीं भी उलझाव या भटकन नहीं है। भले ही कहीं-कहीं लय बाधित भी हो गई हो, लेकिन जो व्यक्त करना चाहा है, वह पाठकों तक पहुँचा है। कितनी ही जगह अभिव्यक्ति अपनी कलात्मकता के वैभव का झंडा भी उठाए नजर आई है। यह कलात्मकता अनेक कविताओं के शीर्षकों और स्वयं कृति के शीर्षक में भी देखी जा सकती है। कहा जा सकता है कि रचनाकार के रचना क्षेत्र में प्राथमिक प्रवेश और प्रयास की दृष्टि से यह कृति काफी हद तक संभावनाशील है। साथ ही, भविष्य में, रचनाकार से बेहतरीन रचनाओं के प्रति आश्वस्त भी करती है। रचनाकार को शुभकामनाएँ!

समीक्षक : **विज्ञान भूषण**

संपादन : **पल्लव**

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली

पृष्ठ : 170

मूल्य : रु. 250/-

प्रेमचंद की व्यंग्य कथाएँ

इस बात से कोई असहमत नहीं होगा कि विगत एक सदी से भी अधिक समय से मुंशी प्रेमचंद हिंदी जगत के सबसे लोकप्रिय कथाकार बने हुए हैं। जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष होगा, जिस पर प्रेमचंद की दृष्टि नहीं पड़ी हो और जिसे उन्होंने अपनी कथा का विषय न बनाया हो। हालाँकि, उन्हें मूल रूप से जीवन की विडंबनाओं, विसंगतियों, अंतर्विरोधों और जीवन-संघर्ष के द्वंद्वों से उत्पन्न होने वाले दारुण दुख को अभिव्यक्त करने वाले कथाकार के रूप में जाना जाता है। लेकिन इसके साथ ही, उन्होंने अपनी कहानियों में घर, परिवार, समाज और शासन-प्रशासन में उपस्थित ऐसे लोगों पर खूब कटाक्ष भी किए हैं, जो अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए किसी भी स्तर तक शोषण करने को तत्पर रहते हैं। क्षुद्र मानवीय प्रवृत्तियों पर कटाक्ष करती उनकी पंद्रह व्यंग्यात्मक कहानियों का संकलन 'प्रेमचंद की व्यंग्य कथाएँ' हाल में पल्लव के संपादन में छपकर आया है। प्रेमचंद की लगभग तीन सौ कहानियों में से व्यंग्यात्मक इन पंद्रह कहानियों को एक साथ पढ़ना, अलग तरह की अनुभूति देता है। वास्तव में, इन कहानियों में प्रेमचंद ने सहज मानवीय दुर्बलताओं को उजागर करने का प्रयास किया है, जिसके चलते इनसान के मन में लालच, स्वार्थ और अहंकार की भावना उत्पन्न हो जाती है।

इन कहानियों में कुछ पात्र ऐसे हैं, जो बार-बार आते हैं। मिसाल के तौर पर, मोटे राम शास्त्री नामक किरदार को प्रेमचंद ने कई कहानियों ('मोटेराम जी शास्त्री', 'पंडित मोटेराम की डायरी', 'गुरुमंत्र', 'निमंत्रण', 'मनुष्य का परम धर्म' और 'सत्याग्रह') का पात्र बनाया है। कहना चाहिए कि मोटेराम की आवाजाही कई कहानियों में एक प्रतीक के रूप में होती है, जो लालच, स्वार्थपरता और संकीर्ण सोच का प्रतिनिधित्व करता है। यह भी द्रष्टव्य है कि यह पात्र किसी जाति विशेष पर उँगली नहीं उठाता है, बल्कि इसके बहाने प्रेमचंद उस संकीर्ण सोच के साथ जीने वालों को कठघरे में खड़ा करते हैं, जो स्वयं को सबसे योग्य, बुद्धिमान मानने का मुगालता पाले रहते हैं और अन्य सभी को मूर्ख समझकर, उन्हें अपने अनुरूप हाँकने का प्रयास करते हैं।

धर्म को लेकर भारतीय समाज के आम लोगों में हमेशा से श्रद्धा या कहें धर्मभीरुता विद्यमान रही है। इसी भावना के बहाने कुछ चतुर-धूर्त धर्म के तथाकथित ठेकेदार अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहे हैं। प्रेमचंद अपनी कई कहानियों में ऐसे स्वार्थी लोगों के चेहरों से नकली धार्मिकता का मुखौटा उतारते नजर आते हैं। 'बाबाजी का भोग' ऐसी ही एक कहानी है, जिसमें रामधन और उसकी पत्नी स्वयं भूखे पेट रहते हुए भी धार्मिक पुण्य प्राप्त करने के लिए द्वार पर आए बाबाजी को भरपेट भोजन कराते हैं। इसी तरह 'सत्याग्रह' कहानी में पंडित मोटेराम शास्त्री सत्ता पक्ष को राजनीतिक लाभ दिलाने के लिए लोगों की धार्मिक आस्था का सहारा लेते हैं। प्रेमचंद की कहानी-लेखन की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि वे उसे इस अंदाज में लिखते हैं, जैसे कहानी सुना रहे हैं। उनकी इस विशेषता के बारे में राम विलास शर्मा ने कहा है, 'कहानी फुरसत की चीज है। प्रेमचंद के कहानी कहने में वो फुरसत का भाव मिलता है। जिंदगी के अनुभवों पर टीका-टिप्पणी भी साथ में चला करती है; व्यंग्य, अनूठी उपमाएँ और हास्य बीच-बीच में पाठक को गुदगुदाते हैं।' स्पष्ट है कि प्रेमचंद सरल भाषा और सहज कथानक में भी अपनी वक्रोक्तियों के जरिए गहरी बात कह जाते हैं, जो देर तक हमारे अंतस में गूँजती रहती है। प्रेमचंद केवल बाहरी सामाजिक जीवन में व्याप्त विकृतियों को ही इंगित नहीं करते हैं, बल्कि इनसानी मनोजगत में धँसी कुंठाओं और क्षुद्रताओं को भी लक्षित करते हैं। संग्रह में संकलित 'रसिक संपादक' कहानी में संपादक चोखेलाल शर्मा के बहाने प्रेमचंद उन सभी संपादकों की चुटकी काटते हैं, जो अपनी मानवीय दुर्बलताओं की अभिव्यक्ति करना चाहते हैं।

'विनोद' कहानी में कॉलेज जाने वाले युवाओं के लिए धार्मिक कर्मकांडों और मान्यताओं की इमारत कैसे कागज के महल जैसी ध्वस्त हो जाती है, इसे चुटीले अंदाज में व्यक्त किया गया है। इसी तरह 'दो बैलों की कथा' कहानी वास्तव में है तो जानवरों की दास्तान, लेकिन प्रतीकात्मक रूप में इनसानी प्रवृत्तियों और उसकी मूलभूत आकांक्षाओं पर यह कहानी सटीक टिप्पणी करती है। गहनता से देखा जाए तो प्रेमचंद की 'कफन', 'सद्‌गति' और 'ठाकुर का कुआँ' जैसी कहानियाँ भी हमारे समाज की जातिगत संकीर्ण सोच और सामाजिक विपन्नता पर करारा कटाक्ष करती हैं। लेकिन इन कहानियों में अभिव्यक्त व्यंग्य को 'डार्क सटायर' की श्रेणी में रखा जा सकता है। जबकि समीक्ष्य संग्रह में संकलित व्यंग्यात्मक कहानियाँ, सपाट तरीके से जीवन और समाज की विसंगतियों को अनावृत करती हैं, जिससे सहज ही हास्यास्पद स्थितियों का उद्‌भव होता है। संग्रह में संकलित 'बोहनी', 'स्वांग', 'शादी की वजह', 'कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो' और 'दुराशा' भी ऐसी ही व्यंग्यात्मक कहानियाँ हैं। इस संग्रह में संकलित कहानियों की तासीर से मेल खाती प्रेमचंद की एक अन्य व्यंग्यात्मक कहानी 'लॉटरी' को भी इसमें शामिल किया जा सकता था। बहरहाल, यह कथा-संग्रह अपनी तरह का अनूठा संग्रह है, जो प्रेमचंद के प्रशंसकों को जरूर पसंद आएगा।

जब से आँख खुली हैं

(आत्मकथा)

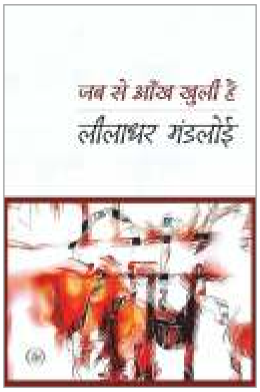

समीक्षक : **अशोक मिश्र**

लेखक : **लीलाधर मंडलोई**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

पृष्ठ : 246

मूल्य : रु. 350/-

लीलाधर मंडलोई पिछले पाँच दशक से हिंदी के साहित्यिक परिसर में कविता, कथेतर गद्य, संपादन, आलोचना विधाओं में निरंतर सृजनरत हैं। उनकी आत्मकथा 'जब से आँख खुली हैं' शीर्षक से प्रकाशित हुई है। यह आत्मकथा कई मायनों में महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत समीक्ष्य पुस्तक 'जब से आँख खुली हैं' आत्मकथा की शुरुआत मंडलोई परिवार की कहानी से होती है। आत्मकथा 65 छोटे-छोटे अध्यायों में विभाजित है। आत्मकथा गाँव गुढ़ी की मजूर बस्ती पीर घनेरी के रहवासी लक्ष्मण प्रसाद मंडलोई और उनकी सहधर्मिणी के जीवन-संघर्षों की गाथा है। उनको कुल 10 संतानें पैदा होती हैं, लेकिन कुपोषण या बीमारियों के चलते पाँच संतानें काल कवलित हो जाती हैं। मंडलोई दंपती की आठवीं संतान के रूप में एक बच्चे का जन्म होता है, जो कि नामकरण के बाद लीलाधर कहलाता है। मंडलोई दंपती अपने बच्चों का पेट पालने के लिए कोयला खदानों में मजदूरी करते हैं। घर में राशन के अभाव में बच्चों को भूखा न सोना पड़े, इसके लिए वे आस-पास के प्रकृति से महुआ या जो भी जंगली खाद्य फल-फूल मिलता है, उसे लाकर पकाते हैं और बच्चों को खिला देते हैं, बेशक वे खुद नहीं खाते।

आत्मकथा में लेखक का बचपन है, छिंदवाड़ा के आस-पास की कोयले की खदाने हैं, मजूरों का परिवेश है, तदजन्य भयावह गरीबी और उसके अनगिनत चित्र हैं। यहाँ सतपुड़ा का प्राकृतिक हरीतिमा से भरा खूबसूरत जंगल है, भाँत-भाँति के पक्षी हैं, नदी है, फल-फूल हैं, पहाड़ हैं और यहीं लेखक के पिता परिवारसहित जीविका अर्जित करने के लिए आते हैं। परिवार में पिता और माँ, दोनों ही मजदूर हैं।

आत्मकथा विस्थापित दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक मजदूरों की हलकान जिंदगी की कहानी बड़ी ही ईमानदारी से कहती है, जो अपनी जमीन से उखड़कर मजदूरी के लिए छिंदवाड़ा और दमुआ जिलों में फैली कोयला खदानों में मजदूरी के लिए जा पहुँचते हैं। ये मजदूर गोरखपुर से लेकर बिहार और मध्यप्रदेश छत्तीसगढ़ के इलाकों से होते हैं। इन मजदूरों के बच्चों के लिए न स्कूल होता है, न अस्पताल, न आवास और पक्की नौकरी भी नहीं, मजदूरी मिली तो ठीक, नहीं मिली तो और भी दिक्कत। बारिश के दिनों में खदानों में काम नहीं मिलता, फिर कुछ बचत की गई पूँजी से इनका काम चलता है। इन मजदूरों के हिस्से में आता है असीम दुख, दुर्घटनाएँ, भूख, अकाल, बीमारियों का अंतहीन सिलसिला, जिसे वे नियति मानकर भोगने को अभिशप्त होते हैं। इसके बावजूद, न ही उनकी सहायता कोई सरकारी तंत्र करता है, न ही समाज करता है। यहाँ लेखक सिर्फ अपनी पीड़ा को ही नहीं व्यक्त करता, बल्कि परिवेशजन्य परिस्थितियों का, तत्कालीन समय का भी चित्र अभिव्यक्त करता है।

लेखक का जीवन अभावों और संघर्षों से भरा होता है, लेकिन दोस्त, प्रकृति और जीवन से जो पाठ उसे मिलते हैं, वह उसे ग्रहण करता है। लेखक ने पूरी आत्मकथा में कहीं भी सहानुभूति अर्जित करने की कोशिश नहीं की है, यह साफ-साफ दिखता है। लेखक के पास स्कूल के लिए कॉपी, किताबें, स्लेट वगैरह नहीं होतीं, ढंग के कपड़े भी नहीं होते। खुले में पेड़ों की छाँव के नीचे बच्चे बोरे का टुकड़ा घर से ले जाते और उसी पर बैठते। स्लेट पर चलता स्कूल। ऐसे स्कूल भारत के ग्रामीण अंचल में आज भी दिखते हैं। स्कूल में पढ़ने वाले मजदूर बच्चों को सवर्ण जाति के लोग कुचक्र रचकर पढ़ने से भी हतोत्साहित करते हैं, जिसका जिक्र इस आत्मकथा में है।

यह आत्मकथा यह प्रश्न खड़ा करती है कि आदिवासियों का जीवन उस समय जैसा था, आज उसमें क्या तब्दीली आई है। आज चहुँ ओर के हालात देखकर हम कह सकते हैं कि कहीं कोई बदलाव नहीं है, बल्कि आदिवासी जिन प्राकृतिक संसाधनों के सहारे जीवनयापन करते थे, उनसे आज उन्हें बेदखल किया जा रहा है और उनका सर्वस्व उनसे छीना जा रहा है। आज नदियों का जल जहरीला हो चला है, जंगल पर कॉरपोरेट का कब्जा बढ़ता ही जा रहा है। आदिवासी जीवन पर यह आत्मकथा एक भयावह कड़वे सच की भांति है। हम कह सकते हैं कि हाशिए के समाज को गुजारे लायक न्यूनतम साधन मिल पाना भी किसी स्वप्न सरीखा है। आत्मकथा का आकाश और उसकी व्यापकता धरती की मानिंद है, जो अपने रचाव में सारे जमाने की अनकही पीड़ा, दुख-दर्द शामिल कर लेती है। यदि भाषा की बात करें, तो लेखक की भाषा सहज और पाठक को बाँध लेने वाली है, जो कि कृति की रचना बहुत ही सूक्ष्म ब्योरों के साथ प्रस्तुत करती है और पढ़वा ले जाने का सामर्थ्य रखती है। यह आत्मकथा बहुत ही साफगोई के साथ आदिवासी जीवन की अकथ पीड़ा को महागाथा की भाँति प्रामाणिकता के साथ हमारे सामने रखती है और यही इसकी सफलता भी है।

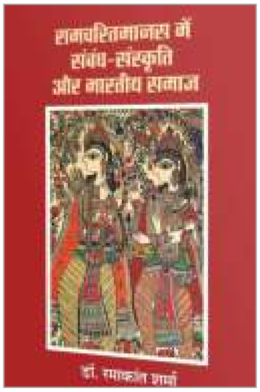

समीक्षक : **डॉ. अशोक कुमार ज्योति**

लेखक : **डॉ. रमाकांत शर्मा**

प्रकाशक : समदर्शी प्रकाशन, साहिबाबाद, उत्तर प्रदेश

पृष्ठ : 236

मूल्य : रु. 596/-

रामचरितमानस में संबंध-संस्कृति और भारतीय समाज

कुछ दिन पूर्व बहुप्रतीक्षित, अति महत्वपूर्ण तथा सर्वहस्त और सर्वमानस ग्रहणीय पुस्तक प्राप्त हुई, जिसका नाम 'रामचरितमानस में संबंध-संस्कृति और भारतीय समाज' है। इसके लेखक डॉ. रमाकांत शर्मा हैं। लेखन और व्यक्तित्व में प्रामाणिक मूल्यों के आग्रही, अपने प्रामाणिक लेखन और प्रामाणिक व्यक्तित्व के आधार पर हरियाणा साहित्य अकादमी, संसद भवन एवं अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित डॉ. रमाकांत शर्मा, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी, हरियाणा में हिंदी विभागाध्यक्ष हैं। वे स्वयं गीतकार हैं, कवि हैं, आलोचक हैं। शिक्षा-शोध के दौरान वे प्रयागराज, काशी और शांतिनिकेतन के महनीय विश्वविद्यालयों की परंपरा से जुड़े रहे हैं और रामकथा के मर्मज्ञ विद्वानों के निकट संपर्क में भी रहे हैं। इसलिए भी इस कृति की भाषा और उद्देश्य की उत्कृष्टता को समझा जा सकता है। महाकवि तुलसीदास विरचित 'रामचरितमानस' और रामकाव्य-आधारित कृतियों पर अनेक शोधकार्य हुए हैं और अनेक महत्वपूर्ण पक्षों का अनुसंधान भी हुआ है। यह महाकवि का काव्य-वैशिष्ट्य है कि नित नवीन विषय उद्घाटित होते रहते हैं। यह कृति उसी शृंखला का नव्य लेखन है।

भारतीय जीवन-संस्कृति संबंधों पर आधारित है। परिवार से निकलकर जब हम सामाजिक प्रांगण में आते हैं, तो हमारी मूल सीख यही होती है कि हम जैसे पारिवारिक सदस्यों को रक्त-संबंध के नामों से पुकारते हैं, उसी तरह समाज के हर व्यक्ति से हमारा संबंध-सूत्र स्थापित हो। इसलिए, विशेषकर ग्रामीण जीवन में, हर व्यक्ति से हमारा यह संबंध-सूत्र बनता जाता है। गाँवों में कोई हमारा दादा होता है, कोई दादी; कोई हमारा काका होता है, कोई काकी; कोई हमारा भाई होता है, कोई बहन! इसलिए पूरा गाँव एक परिवार बन जाता है। ये संबंध हमारे संबल होते हैं। इसलिए हम कहते हैं 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। सारी धरती को परिवार मानने का यह महत् भाव संबंधों की समझ से उत्पन्न होता है।

इस कृति का प्रणयन डॉ. रमाकांत शर्मा जी के सांवेदिक व्यक्तित्व का सुफल है। राम हर संबंध की उत्कृष्ट कसौटी हैं। हिंदू संस्कृति में संबंध-आदर उच्चारण माना जाता है। तभी हमारे यहाँ 'गुरु' और 'गुरुकुल' की परंपरा रही है।

'रामचरितमानस में संबंध-संस्कृति और भारतीय समाज' पुस्तक आठ अध्यायों की संबंध-मालिका में पिरोई हुई है। वे हैं—

1. रामचरितमानस : एक सनातन महाकाव्य,
2. भारतीय समाज और उसकी संबंध-संस्कृति,
3. भारतीय समाज-संरचना के मूल तत्व,
4. संबंध-स्थापन के मूल बिंदु,
5. रामचरितमानस में व्यक्त भारतीय समाज,
6. रामचरितमानस के पात्र और उनकी संबंध-संस्कृति,
7. भारतीय समाज की चुनौतियाँ और रामचरितमानस की संबंध-संस्कृति; और
8. वैश्वीकरण का दौर और रामचरितमानस की संबंध-संस्कृति।

इन अध्यायों के पश्चात् विद्वान् लेखक ने 'निष्कर्ष' एवं 'उपसंहार' के माध्यम से अपने संपूर्ण चिंतन को सारतः प्रस्तुत किया है।

संबंधों को संस्कृति का पर्याय मानने वाले डॉ. रमाकांत शर्मा ने लिखा है, 'भारतीय समाज विशुद्ध रूपेण संस्कृत समाज है। इसकी बुनावट में संबंधों का विशेष महत्व है। वास्तविकता यह है कि हम यदि भारतीय संस्कृति का पर्याय खोजते हैं, तो एक ही शब्द उसे रूपायित करता है—संबंध।'

इसी स्थापना के आधार पर इस ग्रंथ का लेखन हुआ है, जो संबंध-निर्वाह के आधार पर श्रीराम के अनेक रूपों को दर्शाता है तथा परिवार, राष्ट्र और आम जन के साथ हमारा संबंध स्थापित करता है। ग्रंथ में परिवार और समाज के आत्मीय संबंधों के आधार पर 'रामचरितमानस' का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो प्रशंसनीय है।

'गाँवों की ओर' (विचार), 'उदयगान', 'गीत-अगीत', 'मेरी प्रिय कविताएँ', 'गीति काव्य और राष्ट्रीयता', 'समीक्षा के स्वर', 'आंदोलनमुक्त हिंदी कविता का वैकल्पिक मूल्यांकन' जैसी प्रामाणिक पुस्तकों के पश्चात् डॉ. रमाकांत शर्मा जी की यह आठवीं कृति 'रामचरितमानस में संबंध-संस्कृति और भारतीय समाज' साहित्य-जगत में अवश्य प्रतिष्ठित होगी। लगभग ढाई सौ पृष्ठों की समदर्शी प्रकाशन, साहिबाबाद से प्रकाशित और माननीय लोकसभा अध्यक्ष श्री ओम बिरला द्वारा लोकार्पित यह पुस्तक शोधार्थियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी। भारतीय समाज में संबंधों के महत्व और कुटुंब-प्रबोधन की दिशा को रेखांकित करती पुस्तक उस दौर में लिखी गई है, जिस दौर में भारतीय परिवारों को टूटने से बचाने के लिए संबंध-संस्कृति को समझने की बहुत जरूरत है। मेरी ओर से भी विद्वान् रचनाकार को हार्दिक बधाई!

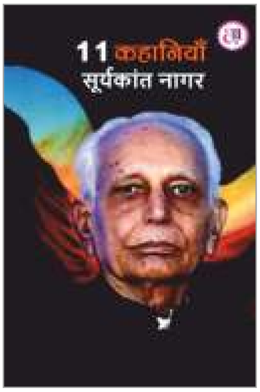

समीक्षक : **प्रकाश कान्त**

लेखक : **सूर्यकांत नागर**

प्रकाशक : अद्विक पब्लिकेशन प्रा.लि., पटपड़गंज, नई दिल्ली-110092

पृष्ठ : 118

मूल्य : रु. 200/-

ग्यारह कहानियाँ

(कहानी-संग्रह)

नौ दशक से अधिक लंबी सक्रिय जीवन यात्रा। उसमें साठ-बासठ साल लंबा रचना काल! 31 पुस्तकें, जिनमें कहानी, उपन्यास, संस्मरण, निबंध, लघु-कथा, व्यंग्य इत्यादि सब समाविष्ट रहे। इसके अलावा, इंदौर जैसे शहर में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक-साहित्यिक सक्रिय उपस्थिति! वैसे, यह मात्र कथा-संग्रह नहीं है। भले ही उसका शीर्षक 'ग्यारह कहानियाँ' हो। उसके उत्तरार्द्ध में नागर जी के कथाकार पर लिखे गए छह आलोचकों-लेखकों के लेख भी शामिल हैं।

संग्रह में नागर जी की ग्यारह कहानियाँ हैं। इन्हें उनकी 'प्रतिनिधि' अथवा 'चयनित' कहानियाँ जैसा कुछ नहीं कहा गया है। 'प्रिय कहानियाँ' भी नहीं। वैसे, इन कहानियों को उपर्युक्त किसी खाते में भी डाला जा सकता है। सबसे खास बात यह कि ये सब मध्यवर्गीय जीवनानुभवों की कहानियाँ हैं। नागर जी नौकरी-पेशा मध्यवर्ग के कथाकार रहे हैं। उनकी रचनाएँ यहीं से निकली हैं। उनकी रचना-दृष्टि की निर्मिति इसी के बीच हुई है। आम तौर पर जिन सामाजिक-पारिवारिक मूल्यों-मानकों की बात की जाती है—उसका अधिक बोझ इसी वर्ग पर होता है। एक तरह से वही उनका वाहक भी होता है। हालाँकि, यह भी सही है कि उनमें अपेक्षित बदलाव की जमीन भी वहीं बनती है।

इन कहानियों में मध्यवर्गीय चिंता, आशा-आकांक्षा, दैनिक जीवन-व्यवहार, सोच वगैरह सब शामिल हैं। विशेषकर वे, जिनका केंद्रीय अनुभव घर-परिवार, नौकरी-धंधे, रिश्ते वगैरह से आया हुआ था। हालाँकि, 'जरीवाला जाकेट' का अनुभव विस्तार और नीचे तक हुआ है। उसमें शादी में काम करने वाले पिता-पुत्री हैं, अपमान है, प्रताड़ना है, और लोलुपता है। इतने दंशों के बीच भी काम करते रहने की विवशता भी है। सामाजिक-पारिवारिक सामूहिक उत्सवों की यह अपनी वीभत्सता है। जबकि 'बलि' में एक भिन्न धरातल पर मनुष्यता की नकली, बल्कि पाशविक आस्था की बात है। बीच नदी में मगर द्वारा खींची जा रही दिव्यांग बेटी को अंतिम समय तक माँ द्वारा बचाने की कोशिश और अंततः मगर द्वारा दोनों को नदी में खींच ले जाना—नाव के सवार भक्तों पर करारा प्रहार है। मनुष्यता को स्थगित कर पाखंडी धार्मिकता को बचाना! दोनों कहानियाँ मनुष्य की धूर्तता और असहायता को अलग-अलग तरह से रेखांकित करती हैं। 'तमाचा' मानवीय करुणा को एक बिलकुल अलग रूप में सामने लाती है। एक लगभग अपरिचित व्यक्ति का कथा-नायक के बेटे को स्वयं घर आकर अपनी किडनी देने का प्रस्ताव करना मनुष्यता की विराटता का प्रमाण है।

नागर जी की कुछ एक कहानियाँ हाशिया तबके के प्राणलेवा जीवन-संघर्षों को भी उभारती है, उनकी आंतरिक यातना और क्रूरता को उजागर करते हुए। 'खबर से बाहर' में इसे देखा जा सकता है। 'त्रिशंकु' शहरी मध्यवर्गीय जीवन के अंतर्विरोध और विडंबनाओं की कहानी है।

महानगरीय और उच्च-मध्यवर्गीय जीवन की अपनी विसंगतियाँ हैं, जिन्होंने इनसानी रिश्तों को दरकने की हद तक प्रभावित किया है। 'कोहरे से लिपे चेहरे', 'खेल-खेल में' जैसी कहानियों में इन्हें देखा जा सकता है। 'जल्दी घर आना' में एक विशेष प्रकार का खिलंदड़पन है, जो गहरी पारिवारिकता पर खड़ा है। लेकिन, 'तबादला' व्यवस्था की कुरूपता और झूठ को उभारती है, जिस तरह 'कायर' निजी मन की कायरता को। 'घड़ा' आम पारिवारिक जीवन के छोटे-मोटे सच-झूठ की कहानी है।

नागर जी की कहानियों का नायक जो अकसर उत्तम पुरुष है, वह मुखर है। कथा-कथन भी करता है, लेकिन अपनी ओर से बहुत ज्यादा टिप्पणी नहीं करता। इससे कहानी एकतरफा होने से बच जाती है। यह नायक अनावश्यक रूप से गहरे विश्लेषण में भी नहीं जाता। और कहानी को व्यक्ति की अप्रासंगिक चीर-फाड़ से बचा लेता है।

संग्रह के दूसरे खंड में नागर जी के रचना-कर्म पर पाँच लेख हैं, जिनमें से अंतिम उनके उपन्यास 'यह जग काली कुकरी' पर है—रमेश दवे द्वारा, एक उनके संग्रह पर और उनके संपूर्ण रचना-कर्म पर। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने अपने आलेख 'अहिंसक आदमी के युद्ध' में नागर जी की कहानियों की कई विशेषताओं को रेखांकित करते हुए कहा है कि इनकी कहानियाँ आधुनिक संवेदना की जटिलता और उसकी सहज अभिव्यक्ति के बीच पुल बनाती हैं। डॉ. प्रमोद त्रिवेदी नागर जी के रचनाकर्म पर कहते हैं कि साहित्य सहित तमाम चीजों के अंत की घोषणाओं के बावजूद नागर जी इन कथित 'अंतों' को अपनी कहानियों में जगह नहीं देते। अपनी कहानियों में मनुष्य की सारी कमियों-खामियों-पाखंड इत्यादि के साथ-साथ उसकी उदारता, अच्छाई, गुण वगैरह को भी सामने लाते हैं। कवि-कथाकार चरण सिंह अमी और बी.एल. आच्छा ने भी माना कि नागर जी की कहानियाँ किसी विचारधारा से बँधी न रहकर और सोद्देश्य रहकर मनुष्य की विशिष्टताओं को समझने का प्रयास करती हैं और वे मध्य-निम्न वर्गीय समाज के आर्थिक सामाजिक परिदृश्य की बुनावट को ही नहीं समझातीं, बल्कि उसके नैतिक, आस्थामय मनोवैज्ञानिक पक्ष का चित्रण भी करती हैं।

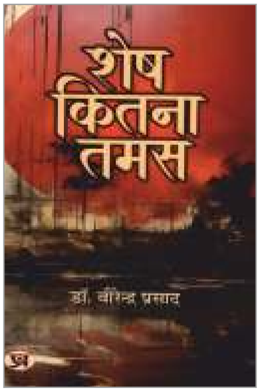

समीक्षक : **संध्या**

कवि : **डॉ. वीरेन्द्र प्रसाद**

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 250/-

शेष कितना तमस

'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान, निकलकर नयनों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।' कवि सुमित्रानंदन पंत प्रस्तुत पंक्तियों में वियोग से ही पहली कविता का जन्म और वियोगी को पहला कवि कहते हैं। आदिकवि वाल्मीकि का 'क्रौंच वध' प्रसंग भी वियोग की इसी महत्ता को उजागर करता है। परंतु कविता के लिए वियोग जितना महत्वपूर्ण है संयोग की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। आखिर, संयोग के धरातल पर ही तो वियोग का अस्तित्व है! कभी वियोग के डर में संयोग अधिक सुखकारी नजर आता है, तो कभी संयोग की आस में वियोग के दिन काटे जाते हैं। कवि डॉ. वीरेन्द्र प्रसाद की 'शेष कितना तमस' शृंगार के संयोग और वियोग, दोनों ही रसों को अभिव्यक्त करता है। कविताएँ युवा-मन के प्रथम प्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। इस संग्रह में कुल 60 कविताएँ संगृहीत हैं। इनमें अधिकतर कविताएँ प्रेम की हैं। इन कविताओं में प्रेम की माँग, प्रेम के समर्पण, प्रेम के उद्गार आदि का भाव नजर आता है। इनके अतिरिक्त, स्वाभिमान, आत्मविश्वास और विरह भी कविताओं का विषय बने हैं। कुल मिलाकर, इन कविताओं में स्वानुभूति है। कवि 'भूमिका' में स्वयं कहता है—'कहीं-न-कहीं कोई जाना-पहचाना चेहरा, कोई वास्तविक घटना, परंपरा से अर्जित संस्कार, अनुभवजन्य सत्य आदि ही कविता की कच्ची सामग्री हैं। ये अनुभव महज प्रसंगों का नहीं, बल्कि भावनाओं का भी है।' संग्रह पढ़ते हुए यूँ लगता है कि कवि ने प्रेमिका के प्रति अपनी भावनाओं की दैनंदिनी को काव्यमय कर दिया है। उदाहरण के लिए, संग्रह की पहली ही कविता देख सकते हैं—

तुम्हारे संग घूमना/ हँसना, बोलना मुझे अच्छा लगा/ हाथ पकड़कर हम चले/ राहों में कई लोग मिले/ नज़रें बचाकर सबसे /अपने में हम मगन रहे/ चलते-चलते जो खाई ठोकर/ झुककर, तेरा सँभलना, मुझे अच्छा लगा।

इन मृदु अनुभवों के साथ डॉ. वीरेन्द्र की कविताओं पर छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की छाप भी नजर आती है। उदाहरण के लिए, सुमित्रानंदन पंत की 'मौन निमंत्रण' कविता-पंक्तियाँ—स्तब्ध ज्योत्सना में जब संसार/चकित रहता शिशु-सा नादान,/ विश्व के पलकों पर सुकुमार/ विचरते हैं जब स्वप्न अजान,/ न जाने नक्षत्रों से कौन/ निमंत्रण देता मुझको मौन, और वीरेन्द्र जी की कविता, 'तुम देते निमंत्रण मुझको मौन' की कविता-पंक्तियाँ—एहसास सुखद, खिल उठे नयन/ खिल उठे नयन, बिंध गया मन/ रुक जाऊँ एक पल तेरे बगल में/ विस्मित खड़ा तकते तेरे नयन/ दीर्घ समीर भरता निःश्वास/ चंचल लहरों में तुम हो कौन/ तुम देते निमंत्रण मुझको मौन।

इन दोनों में साम्यता देख सकते हैं। अंतर है तो बस इतना कि प्रकृति के सुकुमार कवि की कविता प्रकृति को समर्पित है, जबकि प्रेम रस में पगे कवि वीरेन्द्र प्रसाद की कविता प्रेमिका को समर्पित है। कविताओं के शीर्षक कविता के भावों को अभिव्यंजित करने का काम करते हैं। 'मृदु स्पर्श' प्रेमी के कोमल स्पर्श की सुखद स्मृति को बयाँ करते हैं। 'तेरा मेरा साथ' और 'तुम्हारे साथ रहकर' कविताएँ सहचर प्रेम की सुखद स्मृतियों की सुखद कहानी है। 'पुलकित हुआ मेरा हृदय', 'जबसे तुमने मुझको देखा', 'आज भी हो तुम', 'तुम और मैं', मेरा जीवन बोल रहा है', 'प्रियवर तुमको कैसे पाऊँ मैं', 'चाँद में तुमको निहारूँ', 'तुम आती हो', 'लिखना तेरा नाम', 'तुम बिन जीवन अधूरा है' आदि कविताओं में एक प्रेमी का अपनी प्रेमिका के प्रति प्रेम उद्गार है। कवि वीरेन्द्र अपनी कविताओं में प्रकृति को नहीं भूलते। प्रकृति उनकी कविताओं में प्रेम की साक्षी है। 'चाँद को मालूम' कविता में चाँद को सब कुछ पता है। वह वर्तमान का साक्षी और भविष्य का वक्ता है। कुछ कविताएँ दार्शनिक भी नजर आती हैं, जैसे 'जीने का वरदान' में कवि लिखता है—

निराला तेरा जीने का वरदान /सित-असित, मिलन-विरह सब/ अनुरंजित भी, मिटने का अभिमान/ निराला तेरा, जीने का वरदान

कुछ कविताओं में कवि निराश लगता है और जीवन में आशा की तलाश करता नजर आता है। इन कविताओं में 'पंथी अकेला', 'शेष कितना तमस' और 'बता कोई औजार' आदि प्रमुख हैं। आगे कवि आशा और स्वाभिमान के भाव भी अपनी कविताओं में तलाश करता है। 'स्वाभिमान', 'साकार स्वप्न', 'मुझको स्व से प्यार है' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं।

संग्रह की शुरुआत प्रेम के संयोग से होती है और समाप्ति वियोग में होती है। 'तुमको भुला न पाऊँ', 'पल भर को क्यों प्यार किया', 'जिसके लिए सपने सजाए', 'फिर उदास दिल' सहित 'संघर्ष', 'बारिश का नमकीन पानी' आदि कविताओं में आशाजन्य विरह की पीड़ा सुनाई देती है। यह विरह ऐसा नहीं है, जो दहाड़कर रोता या सिसकता है, बल्कि यह हृदय में कलुशता लाए बिना मिलन की आशा के दीप जलाता है। कवि वीरेन्द्र प्रसाद की 'शेष कितना तमस' प्रेमरस में पगी मानव अनुभूतियों की सहज काव्यमय अभिव्यक्ति है।

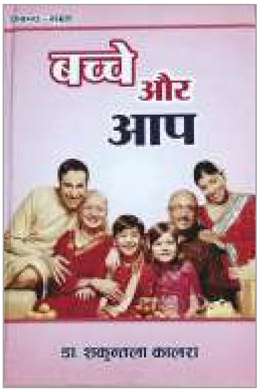

समीक्षक : **मंजु रानी जैन**

लेखिका : **डॉ. शकुन्तला कालरा**

प्रकाशक : अविचल प्रकाशन

पृष्ठ : 400

मूल्य : रु. 168/-

बच्चे और आप

(निबंध-संग्रह)

हाल ही में, हिंदी बालसाहित्य की प्रतिष्ठित लेखिका शकुन्तला कालरा का बाल मनोविज्ञान से जुड़ा निबंधों का नवीनतम संग्रह प्रकाशित हुआ है—'बच्चे और आप'। पुस्तक की 'भूमिका' के शीर्षक में लेखिका ने पूरी पुस्तक का सारांश इन सात शब्दों में व्यक्त कर दिया है—'बच्चे को अपना समय और स्नेह दें।' आगे इसी को व्यास शैली में व्याख्यायित किया है—इक्कीसवीं सदी में संचार प्रौद्योगिकी, अति प्यार और अति सुरक्षा न दें, बच्चों के व्यक्तित्व-निर्माण में माता-पिता का योगदान, पारिवारिक मूल्य, बच्चे और आप, बालकों के मनोविज्ञान को समझें आदि शीर्षकों के अलग-अलग 23 आलेखों में, बच्चे और उनके परिवार से जुड़ी अत्यंत महत्वपूर्ण समस्याओं पर केंद्रित हैं।

'भूमिका' का प्रारंभ पोलार्क के कथन से किया है—'बच्चे स्वर्ग के देवताओं की अमूल्य भेंट हैं।' इस अमूल्य भेंट की देखभाल हमें पूरे मनोयोग से करनी है। बच्चों की उन्नति में पूरे राष्ट्र की समृद्धि छिपी है। आजकल अच्छे परिवारों से आए बच्चों मे भी आत्मविश्वास की कमी पाई जाती है। मानसिक तौर पर उनमें कई प्रकार की ग्रंथियाँ जन्म ले लेती हैं। उसका कारण शायद यह भी हो सकता है कि वे कहीं अपने को बहुत अकेला पाते हैं। स्वतंत्रता के बाद आई औद्योगिक क्रांति ने उन्हें अकेला कर दिया। समय के साथ-साथ अधिकांश माता-पिता, दोनों ही नौकरी पर चले जाते हैं और बच्चा घर में नौकर अथवा आया के संरक्षण में छोड़ दिया जाता है। बचपन से ही बच्चा अपने माता-पिता और अपनों के स्नेह को तरसता है। इसके बाद, दो-तीन साल से ही उसे नर्सरी में डाल दिया जाता है। उसके कोमल मस्तिष्क को बहुत-सी कसरत करनी पड़ जाती है, ताकि सफल होकर किसी कॉन्वेंट स्कूल का हिस्सा बन सके। अकेले रह रहे बच्चों को मालूम है कि किस तरह वह माता-पिता से दूर रहने के बदले महँगे-महँगे आधुनिक खिलौने और उपकरण हासिल कर सकता है। टी.वी. और मोबाइल से तो आज का हरेक बच्चा चिपका रहता है। माँ काम में व्यस्त है तो बच्चे टी.वी. या मोबाइल में उलझे हुए हैं। अब बच्चे घर से बाहर ही नहीं निकलते, घर में ही बंद होकर रह जाते हैं।

आज की सबसे बड़ी समस्या है—माँ-बाप का बच्चों की जिंदगी में अत्यधिक हस्तक्षेप। सभी माता-पिता अपने बच्चों को डॉक्टर, इंजीनियर, चार्टर्ड एकांउटेंट बनाना चाहते हैं। वे यह जानना ही नहीं चाहते कि बच्चा क्या चाहता है? उसकी योग्यता की सीमा क्या है? वे उन्हें वही शिक्षा देना चाहते हैं, जिसमें वे आधिकारिक ज्ञानोपार्जन कर सकें। इसी में आज वास्तविक तरक्की समझी जाती है। माता-पिता बचपन से ही उन्हें ज्ञानोपार्जन का प्रशिक्षण दे रहे हैं। विज्ञापन की दुनिया से बच्चों के बचपन का शोषण हो रहा है।

माता-पिता सुरक्षा और स्नेह का स्रोत हैं। अति हर चीज की बुरी होती है—चाहे वह प्यार की, लाड़-दुलार की ही क्यों न हो। कुछ माता-पिता अपने बच्चों को पर्याप्त स्नेह नहीं देते और कुछ अत्यधिक लाड़-प्यार करते हैं। उनकी हर छोटी और बड़ी बात पूरी करते हैं। ये दोनों स्थितियाँ अति की हैं और बच्चों में असुरक्षा की भावना भरती हैं। अतः बच्चे के सर्वश्रेष्ठ हित की दृष्टि से हमें इन दोनों अतियों से बचना है।

बच्चों की सोच का निर्माण भी माता-पिता द्वारा होता है। बच्चों में सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करें, ताकि उनमें आत्मविश्वास, निर्भीकता, आत्मानुशासन आदि गुणों का विकास हो। कुछ माता-पिता बच्चों की तुलना दूसरे बच्चों के साथ अथवा उनके ही भाई-बहनों के साथ कर उन्हें कुंद कर देते हैं। बच्चों की कमियाँ ढूँढ़-ढूँढ़कर उनका मनोबल गिराने की अपेक्षा उनके गुणों को उजागर करना चाहिए।

स्वास्थ्य सबसे बड़ा सुख माना गया है। माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को प्रारंभ से ही स्वास्थ्य के महत्व से परिचित कराएँ। निरोग रहने के लिए कुछ बातें निषिद्ध भी मानी गई हैं, जैसे—मादक द्रव्यों, नशीली दवाओं का सेवन। यह स्वास्थ्य का सबसे बड़ा शत्रु है। आज का किशोर वर्ग इस ओर आकृष्ट हो रहा है। घर के साथ-साथ स्कूलों में भी बच्चों को इसका उचित प्रशिक्षण मिलना चाहिए। खेलों को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। कुछ माता-पिता की दृष्टि में यह समय का अपव्यय है, किंतु यह गलत धारणा है। खेल बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए सर्वाधिक सुखदायी एवं संतुष्टि-प्रदायक साधन है।

हर दृष्टि से बच्चों के व्यक्तित्व के समुचित विकास को ध्यान में रखते हुए शकुन्तला कालरा जी की यह पुस्तक और इसका एक-एक आलेख अभिभावकों के लिए न केवल पठनीय है, वरन् उसकी व्यावहारिक उपयोगिता भी है। वह कहती हैं कि बच्चों को अपना समय देकर नई पीढ़ी को गढ़ने का काम माता-पिता और शिक्षक, दोनों ही कर सकते हैं। बालक ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। उसके सुंदर व्यक्तित्व के निर्माण के लिए घर में माता-पिता, विद्यालय में शिक्षक और समाज की हर इकाई की संयुक्त भूमिका है। इनमें से एक की भी भूमिका विघटित होती है, तो बालक का सामाजिक विकास अवरुद्ध हो जाता है और उनका व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है।

समीक्षक : **उपासना**

लेखक : **कुणाल सिंह**

प्रकाशक : लोकभारती पेपरबैक्स, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

पृष्ठ : 299

मूल्य : रु. 214/-

अन्य कहानियाँ तथा झूठ

'अन्य कहानियाँ तथा झूठ' कुणाल सिंह का नया कहानी-संग्रह है। इस संग्रह में कुल 13 कहानियाँ हैं, जो पिछले दो-ढाई दशकों के दौरान प्रमुख पत्रिकाओं और कहानी संग्रहों में प्रकाशित होकर पर्याप्त रूप से चर्चित हुई हैं। यह कहानी-संग्रह वैश्वीकरण के पश्चात् नई दुनिया में अपने अस्तित्व को लेकर जूझते मनुष्य के मनोविज्ञान की सूक्ष्म पड़ताल है।

'आदिग्राम उपाख्यान' इस संग्रह की पहली कहानी है। यह 1990 के दशक के बाद भारतीय राजनीति में आए परिवर्तनों, जैसे अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, विचारधारा का ह्रास और लालफीताशाही के प्रति एक गहरे गुस्से और मोहभंग को दर्शाती है। यह एक तरह से आंतरिक आलोचना है, जो बताती है कि सत्ता का चरित्र किसी भी विचारधारा को कैसे प्रभावित कर सकता है।

इसी प्रकार, 'इति गोंगेश पाल वृत्तांत' कहानी भी गहरे सामाजिक-राजनीतिक सरोकारों को लेकर है। गोंगेश पाल का जीवन भ्रष्टाचार और सत्ता की लिप्सा से प्रभावित है, और वह इस व्यवस्था का हिस्सा बनते हुए भी उससे जूझते सिर्फ एक व्यक्ति के जीवन की कहानी नहीं, बल्कि एक पूरे दौर और समाज की कहानी है,। कहानी के कुछ अंश के बाद आने वाले सायास व्यवधान, जिन्हें विज्ञापन या ब्रेक कहते हैं, अनूठा प्रयोग है।

'सनातन बाबू का दांपत्य' कहानी भारतीय मध्यवर्गीय दांपत्य जीवन के उन पहलुओं को दिखाती है, जहाँ प्रेम और समर्पण के साथ-साथ अनदेखी, ऊब और एक अनकहा खालीपन भी मौजूद होता है। कहानी किसी बड़े नाटकीय मोड़ के बजाय, रोजमर्रा के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं और संवादों के माध्यम से रिश्ते की परतें खोलती है। 'आखेटक' कहानी के मुख्य नायक पालबाबू तारघर में काम करते हैं। अपने बाप-दादाओं की तरह वह भी शिकार खेलना चाहते हैं। इसका शीर्षक 'आखेटक' (शिकारी) ही कहानी के केंद्रीय विचार की ओर संकेत करता है कि कैसे जीवन में हर कोई किसी-न-किसी रूप में 'शिकारी' या 'शिकार' बन जाता है, या कैसे कुछ प्रवृत्तियाँ हमें अनजाने में ही आखेटक बना देती हैं। इसी प्रकार, 'डूब' कहानी के शीर्षक में ही कई अर्थ सिमटे हुए है।

'इतवार नहीं' कहानी आधुनिक शहरी जीवन की भागदौड़, आकांक्षाओं के बोझ का मार्मिक चित्रण है। यह एक खूबसूरत ढंग से लिखी गई कहानी है। इस कहानी की यात्रा एक मनुष्य की पारिवारिक और पेशेवर जीवन के बीच आत्मखोज जैसी है। कहानी का वह बिंदु बहुत चुभने वाला है, जहाँ कहा जाता है, 'यदि इतवार की छुट्टी समाप्त हो जाए...'—यह कथन यथार्थ और मनुष्य की आत्मा के बीच के संबंध को उजागर करता है। कैसे एक दिन और उसकी अपेक्षाएँ पूरे जीवन के स्वरूप को पलट सकती हैं, यह विचार ही बहुत गहन और डरावना है।

'प्रेमकथा में मोजे की भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन' कहानी प्रेम और रिश्तों की पारंपरिक, रूमानी अवधारणाओं को चुनौती देती है। यह शीर्षक ही अपने आप में एक विरोधाभास है—जहाँ प्रेम एक भव्य और रूमानी एहसास है, वहीं मोजा एक साधारण, घरेलू वस्तु। यह कहानी इसी विरोधाभास का इस्तेमाल कर एक गहरा मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। 'प्रेम के शुरुआती दिनों में हम अकसर अपनी भूमिकाओं को लेकर शशोपंज की स्थिति में रहते हैं। खासकर लड़के-लड़कियों के सामने बड़ी जल्दी अपनी भूमिका की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है और अपनी-अपनी इन स्पष्ट हो चुकी भूमिकाओं में लोग इतने रूढ़ हो जाते हैं कि गिरहें सुलझाने का हुनर भुला देते हैं।' इस कहानी की सबसे दिलचस्प बात मुझे यह लगी कि अंत के कुछ पहले तक समझ नहीं आता कि एक कहानी में, असल में प्रेम कहानी में कैसे एक मोजा वैम्प का किरदार निभा सकता है। लेखक जिन मित्रों की बात कहानी में कर रहा है, जिनके अनुसार मोजे को लेकर नायक की हीनता असल में वर्ग भेद की बात कर रही है, तो हाँ, यह सत्य है कि कहानी वर्ग भेद की ही बात कर रही है। प्रेम कहानी की तमाम उलझनों-गिरहों के साथ-साथ! बेशक, नायक को दो दिन पहले ट्यूशन के पैसे मिले हैं, पर जब उन पैसों से एक तरफ महीनेभर पेट भरने तथा दूसरी ओर मोजे खरीदने का विकल्प हो तो आदमी पेट भरने को ही तरजीह देगा।

कुल मिलाकर, कुणाल सिंह का कहानी-संग्रह 'अन्य कहानियाँ तथा झूठ' हमें न केवल कहानियाँ सुनाता है, बल्कि जीवन और मानवीय अस्तित्व की जटिलताओं पर विचार करने का अवसर भी देता है। वे अपने पात्रों के माध्यम से एक बड़े फलक को छूते हैं, और यही कारण है कि ये कहानियाँ पाठक को लंबे समय तक याद रहेंगी।

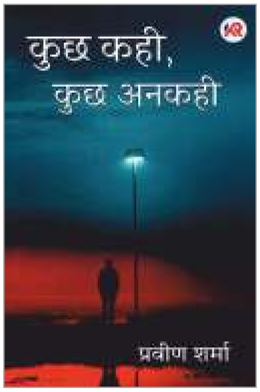

समीक्षक : **डॉ. वेद प्रकाश दुबे**

लेखिका : **प्रवीण शर्मा**

प्रकाशक : कनिका प्रकाशन, द्वारका, नई दिल्ली

पृष्ठ : 350

मूल्य : रु. 114/-

कुछ कही, कुछ अनकही

‘कुछ कही, कुछ अनकही’ कविता-संग्रह लेखिका का एक ऐसा साहित्यिक प्रयास है, जो वर्तमान समय में सामाजिक यथार्थ और स्त्री-मन की जटिलताओं को सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है। यह कविता-संग्रह आधुनिक हिंदी कविता में एक महत्वपूर्ण योगदान है, जो निजी अनुभवों और सामाजिक सरोकारों के बीच की धुँधली रेखा को उजागर करता है।

प्रस्तुत संग्रह में कुल 46 कविताएँ संगृहीत हैं। ये ‘प्रार्थना’, ‘ऋतु चक्र’, ‘पतझड़ की हवा’, ‘बारिश की रिमझिम’, ‘पत्थर की बुत’, ‘सूखी प्यासी वृद्धा धरा’ से गुजरते हुए ‘सदा नीरा ही रही मैं’ पर समाप्त होती हैं। ये कविताएँ विषय-वस्तु की दृष्टि से विविध हैं—प्रकृति, पितृसत्ता, विवाह संस्था की विडंबनाएँ, मातृत्व का द्वंद्व, आत्मनिर्भरता की आकांक्षा, स्त्री अस्मिता की खोज और सामाजिक चुप्पियों के विरुद्ध एक सशक्त स्वर जैसे विषय इसमें शामिल हैं। लेखिका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रत्येक कविता में पाठक को संवेदना से जोड़ने में सफल होती हैं। कहीं शब्दों के माध्यम से तो कहीं मौन के माध्यम से।

इस संग्रह में संकलित कविताओं की संरचना में किसी अलंकरणों की भरमार नहीं है, बल्कि भाषा सहज, संवादात्मक और प्रभावकारी है। कविता की यह शैली इस बात का प्रमाण है कि लेखिका संवेदना को सहजता से बरतने में विश्वास रखती हैं, दिखावे से नहीं। कई कविताओं में ‘अनकहा’ को प्रतीकों और मौन के सहारे इतनी कुशलता से रचा गया है कि वे पाठक के भीतर एक दीर्घकालिक छाप छोड़ जाती हैं।

इस संग्रह की कुछ अन्य विशेषताएँ हैं, जैसे—सामाजिक यथार्थ पर गहरी संवेदनशीलता, स्त्री अनुभवों का आत्मस्वरूप, अनकहे भावों की कलात्मक प्रस्तुति और सहज, मगर सघन भाषा-शैली। इन्हीं विशेषताओं के कारण यह संग्रह पठनीय बन पड़ा है।

एक पाठक के रूप में जब मैंने ‘कुछ कही, कुछ अनकही’ पढ़ना शुरू किया, तो मुझे नहीं लगा था कि ये कविताएँ मेरे भीतर इतनी गहराई से उतर जाएँगी। लेकिन हर कविता जैसे मेरे जीवन के किसी कोने को छूने लगी—कभी एक माँ के रूप में, कभी एक बेटी, कभी एक पत्नी, और सबसे ज्यादा एक स्त्री के रूप में। एक बानगी द्रष्टव्य है—

तुम फिर आना,
माँ के आँगन में, बेटे बनकर कहीं भूल जाना
ये रिश्ता
आला बनकर!

इस संग्रह में कुछ कविताएँ जोर से अपनी बात कहती हैं, और कुछ सिर्फ मौन रहकर बहुत कुछ कह जाती हैं। जैसे कोई अनकहा दर्द, कोई छुपा हुआ सवाल, कोई रोकी गई चीख, जो शब्दों से बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ़ रही हो। इन कविताओं ने मुझे यह समझने में मदद की कि हर स्त्री के पास कहने के लिए बहुत कुछ होता है, पर हमेशा वह कह नहीं पाती और यही अनकहा इन कविताओं की सबसे बड़ी शक्ति है।

प्रवीण शर्मा की ये कविताएँ सिर्फ उनके जीवन की नहीं हैं, ये हम सबकी कहानियाँ हैं, जो हमने कभी किसी से नहीं कही, या जो कहनी चाही, लेकिन कह न सके। इसीलिए, इस किताब को पढ़ना मेरे लिए किसी आत्मिक यात्रा जैसा था। अगर आप भी किसी किताब से जुड़ना चाहते हैं, जो आपको संवेदित करें, तो ‘कुछ कही, कुछ अनकही’ आपके लिए है। इसमें प्रकृति के कई रंग उकेरे गए हैं।

निष्कर्षतः, ‘कुछ कही, कुछ अनकही’ एक ऐसा संग्रह है, जो न केवल साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध है, बल्कि वैचारिक और सामाजिक रूप से भी अत्यंत प्रासंगिक है। यह पुस्तक उन सभी के लिए पठनीय है, जो कविता को केवल पढ़ना नहीं, जीना चाहते हैं।

हंगरी के लेखक लास्ज़लो क्रास्ज़नाहोरकाई को मिला साहित्य का नोबेल पुरस्कार

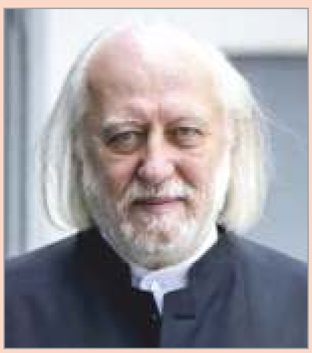

स्वीडिश अकादमी द्वारा वर्ष 2025 का साहित्य का नोबेल पुरस्कार हंगरी के लेखक लास्ज़लो क्रास्ज़नाहोरकाई (Ljszló Krasznahorkai) को उनके साहित्यिक अवदान के लिए प्रदान किया गया है। वे कठिन एवं जटिल गद्य शैली में रचित उपन्यासों के लिए जाने जाते हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ—‘सैटान्टैंगो’, ‘द मेलन्कॉली ऑफ रेजिस्टेंस’, ‘वॉर एंड वॉर’, ‘सेइबो देयर बिलो’, ‘द लास्ट वुल्फ’ और ‘द वर्ल्ड गोज़ ऑन’ आदि हैं। उनकी रचनाएँ निराशा एवं सौंदर्य के अंतर्संबंध का अन्वेषण करती हैं।

मास्को अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला 2025 में 'मुख्य अतिथि देश' के रूप में भारत का प्रतिनिधित्व

दुनिया के सबसे बड़े पुस्तक मेलों में से एक, बड़ी संख्या में आगंतुकों, लेखकों, प्रकाशकों और प्रकाशन उद्योग के पेशेवरों को आकर्षित करने वाले, मास्को अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला (03-07 सितंबर, 2025) में भारत इस वर्ष मुख्य अतिथि देश था। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने देश का प्रतिनिधित्व किया और मेले के दौरान जीवंत साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से आगंतुकों का उत्साहवर्धन किया।

पाँच दिनों में, भारत मंडप बाल साहित्य, डिजिटल प्रकाशन, योग, सिनेमा, पौराणिक कथाओं और खान-पान जैसे विषयों पर बातचीत, प्रदर्शनों और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का केंद्र बनकर उभरा। मेले में व्यावसायिक गोलमेज सम्मेलन, लेखकों के साथ संवाद, कविता पाठ, फिल्म प्रदर्शन और कर्नाटक गायन, ओडिसी नृत्य और राजस्थानी लोक संगीत सहित शानदार सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ शामिल थीं।

प्रतिष्ठित लेखकों, विद्वानों और सांस्कृतिक हस्तियों ने साहित्यिक सत्र को समृद्ध किया। एस.एन. पंडिता, कालिंदी चरण सामल, अक्षत गुप्ता, जया मेहता, मोहित सुनेजा, दीपक कुमार पांडा, आचार्य बालकृष्ण, कुमुद शर्मा, अनिल ज़ंकर, सोनू सैनी और अजय सोनकर—साथ ही व्लादिमीर टॉल्स्टॉय, इरीना मेलिखोवा, नीना कोचेलियावा, स्वेतलाना वासिलेंको, गुज़ेल स्ट्रेलकोवा, ग्रिगोरी, गेवोर्क्यन जैसी प्रख्यात रूसी हस्तियाँ उपस्थित थीं। इनके अतिरिक्त, कुछ अन्य उल्लेखनीय प्रतिष्ठित हस्तियाँ मौजूद रहीं ।

इस पाँच दिवसीय कार्यक्रम में कई गणमान्य व्यक्तियों और वरिष्ठ अधिकारियों ने भाग लिया, जिनमें रूस में भारत के माननीय राजदूत श्री विनय कुमार; एनबीटी के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे; शिक्षा मंत्रालय में संयुक्त सचिव (तकनीकी शिक्षा एवं साक्षरता) श्री गोविंद जायसवाल; रूसी संघ के डिजिटल विकास मंत्रालय के श्री वी.वी. ग्रिगोरिएव; एनबीटी के निदेशक श्री युवराज मलिक और एनबीटी के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम शामिल थे। इसके अतिरिक्त, एनबीटी प्रतिनिधिमंडल में उप निदेशक (प्रदर्शनी) श्री मयंक सुरोलिया, प्रबंधक (बिक्री एवं विपणन) श्री इमरान उल हक, सहायक संपादक श्री द्विजेंद्र कुमार और सहायक निदेशक श्री जी. संपत शामिल थे।

भारतीय मंडप ने रूसी भाषा में अनूदित 22 एनबीटी पुस्तकों के लोकार्पण के साथ विशेष ध्यान आकर्षित किया, जिनमें बच्चों की कहानियों से लेकर भारत के महानतम विचारकों पर आधारित पुस्तकें शामिल थीं।

एमआईबीएफ 2025 में भारत की मुख्य अतिथि देश के रूप में भागीदारी केवल साहित्य तक सीमित नहीं थी—यह एक भव्य सांस्कृतिक उत्सव सरीखा था, जिसने पुस्तकों, ज्ञान और रचनात्मकता के माध्यम से भारत-रूस मैत्री को और प्रगाढ़ किया।

77वें फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेले 2025 में भारत का प्रतिनिधित्व

दुनिया के सबसे बड़े पुस्तक मेलों में से एक, फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेले का 77वाँ संस्करण, 15 से 19 अक्तूबर, 2025 तक फ्रैंकफर्ट व्यापार मेला मैदान, जर्मनी में आयोजित हुआ। 'पढ़ें और जानें भारत' विषय के अंतर्गत, भारत राष्ट्रीय स्टैंड और पहले भारत स्टेज का उद्घाटन फ्रैंकफर्ट में भारत की महावाणिज्य दूत सुश्री सुचिता किशोर ने प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे, अध्यक्ष, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और अन्य विशिष्ट अतिथियों की उपस्थिति में किया। इस अवसर पर, एनबीटी द्वारा प्रकाशित बच्चों के लिए भारतीय पुस्तकों के 17 जर्मन अनुवादों का लोकार्पण किया गया, जो यूरोप में युवा पाठकों तक भारतीय कहानियों को पहुँचाने की दिशा में एक विशेष उपलब्धि है।

इस अवसर पर वक्तव्य देते हुए सुश्री सुचिता किशोर ने पुस्तक मेले में 'ब्रांड इंडिया' की प्रमुखता पर प्रकाश डाला और कहा कि जर्मन भाषा में अनूदित एवं लोकार्पित बच्चों की पुस्तकों से भारतीय प्रवासी समुदाय को बहुत लाभ होगा। प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने कहा कि पुस्तक प्रकाशन और पुस्तक संवर्धन के लिए राष्ट्रीय निकाय के रूप में, एनबीटी भारतीय पुस्तक उद्योग की समग्र प्रस्तुति प्रदान करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के प्रकाशकों को एक साथ लाया है। एनबीटी के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेला 2025 में भारत मंच पर आयोजित होने वाले विभिन्न अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रमों की रूपरेखा को प्रस्तुत किया।

भारत राष्ट्रीय स्टैंड में बारह प्रमुख प्रकाशकों ने व्यक्तिगत रूप से भाग लिया, जबकि 90 से ज्यादा प्रकाशकों ने भारत की पुस्तकों की एक सामूहिक प्रदर्शनी के माध्यम से प्रतिनिधित्व किया। इस प्रदर्शनी में ब्लूम्सबरी, पैरागॉन पब्लिशिंग इंडिया, एआईटीबीएस पब्लिशर्स, श्रॉफ पब्लिशर्स, पीएचआई लर्निंग, रूपा पब्लिकेशंस, मोतीलाल बनारसीदास जैसे भारत के प्रमुख प्रकाशकों की पुस्तकें शामिल रहीं। भारत राष्ट्रीय स्टैंड साहित्यिक आदान-प्रदान, सांस्कृतिक संवाद और वैश्विक सहयोग के लिए एक जीवंत केंद्र बना रहा, जिसमें भारत और विश्वभर के लेखकों, अनुवादकों, प्रकाशकों और विचारकों ने अपने विचार साझा किए।

'हिंदी कमजोर नहीं, बहुत समर्थ भाषा है'—प्रो. विमलेश कान्ति वर्मा

"वर्ष 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ, वर्ष 1950 में भारत गणतंत्र घोषित हुआ। गांधी जी ने हिंदी को स्वतंत्रता आंदोलन की भाषा के रूप में चुना था और कहा था कि 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है।'... 12-14 सितंबर 1949 को भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुई भारतीय संविधान सभा में देशभर के सभी दिग्गज नेताओं ने सर्वसम्मति से देश की 14 भाषाओं में से हिंदी को राजभाषा का गौरवपूर्ण पद दिया था और यह सोचा था कि 15 वर्ष बाद हिंदी देश की राजभाषा होगी और अंग्रेजी की वर्चस्विता समाप्त हो जाएगी।"

उपरोक्त उद्बोधन लब्धप्रतिष्ठ भाषावैज्ञानिक प्रो. विमलेश कान्ति वर्मा ने हिंदी पखवाड़ा के अंतर्गत, 29 सितंबर 2025 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मुख्यालय सभागार में 'राजभाषा हिंदी के 75 वर्ष की विकास यात्रा' विषय पर आयोजित विशेष व्याख्यान के अवसर पर अपने वक्तव्य में दिया। आजादी के 75 वर्षों में हिंदी को क्या मिला? और हिंदी ने क्या खोया? इस पर विचार मंथन करते हुए उन्होंने कहा, "हिंदी का कृष्ण पक्ष भी है और शुक्ल पक्ष भी। हिंदी भारत के 11 प्रदेशों की मातृभाषा है। आज देश बहुत तेजी से बदल रहा है। ऐसे में बिना अपनी भाषा के देश बौद्धिक विकास नहीं कर सकता है। हिंदी कमजोर नहीं, बहुत समर्थ भाषा है। विश्व में सबसे ज्यादा हिंदी पढ़ाई जाती है। तकनीक के क्षेत्र में भी हिंदी किसी से कम नहीं है। अब हिंदी आगे बढ़ रही है।"

न्यास के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने अपने स्वागत-वक्तव्य में कहा कि हिंदी पखवाड़ा को आम तौर पर एक 'रिचुवल' के तौर पर मनाते हैं। इस पर लेख, निबंध प्रतियोगिता होती है, व्याख्यान होते हैं। लेकिन हिंदी पखवाड़ा इस सबसे बढ़कर है। हिंदी युवा भाषा है। आजादी से पूर्व, देश को स्वतंत्र कराने और देश को बनाने की जो एक मुहिम चली, हिंदी को अंग्रेजी के समक्ष खड़ा किया गया। राष्ट्रीय चेतना के साथ हिंदी को अपनाया गया। इसके राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू हैं। हिंदी पिछड़ रही है, ऐसा लगता है, लेकिन इसे ऐतिहासिक रूप में देखें तो धीरे-धीरे हिंदी का जितना सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक फलक विस्तृत हो रहा है, वह आगे बढ़ेगी।

इस कार्यक्रम का संचालन एवं धन्यवाद-ज्ञापन न्यास के राजभाषा एकांश के हिंदी अधिकारी श्री नागेंद्र कुमार ने किया। उन्होंने न्यास के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों से अधिक-से-अधिक हिंदी भाषा में कार्य करने का आग्रह किया।

पुस्तकालयों के महत्व पर कार्यशाला का आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के राष्ट्रीय बाल साहित्य केंद्र (एनसीसीएल) ने न्यास मुख्यालय में भारती एयरटेल फाउंडेशन के सहयोग से पुस्तकालयों के महत्व को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से 27 सितंबर, 2025 को एक कार्यशाला का आयोजन किया। इस कार्यशाला में शिक्षा निदेशालय और दिल्ली के एमसीडी स्कूलों के पुस्तकालयाध्यक्षों और शिक्षकों ने भाग लिया।

इस कार्यशाला का नेतृत्व सुश्री दीप्ति अरोड़ा ने किया, जिन्होंने उपस्थित लोगों के साथ अपने विचारों और अनुभवों को साझा किया। इसके अतिरिक्त, भारती एयरटेल फाउंडेशन के डीजीएम-क्यूएसपी, श्री शशि प्रकाश संजय ने पठन-संस्कृति को बढ़ावा देने के महत्व और इसमें पुस्तकालयों की भूमिका पर अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किए। इसके साथ ही, एनसीसीएल टीम ने एक प्रस्तुति भी दी, जिसमें एनबीटी-इंडिया की राष्ट्रीय ई-पुस्तकालय जैसी विभिन्न गतिविधियों और पहलों पर प्रकाश डाला गया। कार्यक्रम के समापन पर प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र प्रदान किये गए।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत सचल पुस्तक प्रदर्शनी नागपुर शहर में

देशभर में पुस्तकों को सुलभ बनाने की अपनी पहल के तहत, विभिन्न भारतीय भाषाओं में पुस्तकों की विस्तृत श्रृंखला के साथ एनबीटी की सचल पुस्तक प्रदर्शनी महाराष्ट्र के नागपुर शहर में भ्रमण कर रही है। यह परिक्रमा आगामी 22-30 नवंबर, 2025 तक नागपुर पुस्तक मेला तक चलेगी।

स्वच्छता पखवाड़ा के अंतर्गत राष्ट्रीय पुस्तक न्यास कर्मियों द्वारा श्रमदान

'भारतीय भाषा परिवार' पुस्तक के दो खंडों का लोकार्पण

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा सद्यःप्रकाशित, भारतीय भाषा समिति द्वारा शोधपूर्ण ढंग से तैयार किए गए पुस्तक के दो खंडों—'भारतीय भाषा परिवार : न्यू फ्रेमवर्क इन लिंगविस्टिक' और 'कलेक्टेड स्टडीज ऑन भारतीय भाषा परिवार' का 19 अक्तूबर, 2025 को भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद (आईसीएचआर) के अध्यक्ष प्रो. रघुवेंद्र तंवर द्वारा कौशल भवन, नई दिल्ली में लोकार्पण किया गया।

प्रो. रघुवेंद्र तंवर ने कहा कि ये पुस्तकें खूबसूरती से इस बात पर प्रकाश डालती हैं कि कैसे सभी भारतीय भाषाएँ एक ही सांस्कृतिक वृक्ष से निकलती हैं, जो विभाजित करने के बजाय एकजुट करती हैं। प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे, अध्यक्ष, एनबीटी, इंडिया ने इस बात पर जोर दिया कि भारत में भाषा केवल शिक्षा का माध्यम नहीं, बल्कि अनुभूति, संस्कृति और दर्शन का एक साधन है। श्री चामू कृष्ण शास्त्री, अध्यक्ष, भारतीय भाषा समिति ने भारतीय भाषाओं की संरचना पर एक नए दृष्टिकोण के रूप में भारतीय भाषा परिवार की अवधारणा के बारे में बात की, जो एनईपी 2020 के दृष्टिकोण के अनुरूप है। सुश्री मनमोहन कौर, सलाहकार (सीओएसटी) ईबीएसएच भाषाएँ, शिक्षा मंत्रालय ने इस बात पर प्रकाश डाला कि प्रत्येक भारतीय भाषा जीवंत है और एक परिवार का हिस्सा है। श्री युवराज मलिक, निदेशक, एनबीटी, इंडिया ने अपने वक्तव्य में कहा कि ये दोनों खंड केवल पुस्तकें नहीं हैं, बल्कि सांस्कृतिक-दार्शनिक दस्तावेज हैं, जो भारतीय पहचान को समझने के लिए एक नया ढाँचा प्रदान करती हैं। इस कार्यक्रम में श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. मुरलीमनोहर पाठक और प्रख्यात भाषाविद् प्रो. आर.सी. शर्मा भी उपस्थित थे।

न्यास के लेखक प्रो. वीरेन्द्र कुमार भारती को 'राजभाषा गौरव सम्मान'

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित प्रो. वीरेन्द्र कुमार भारती की पुस्तक 'सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के द्वारा कृषक महिलाओं का सशक्तीकरण' को हिंदी दिवस (14 सितंबर, 2025) एवं पाँचवें अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में 'राजभाषा गौरव सम्मान' का प्रथम पुरस्कार माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह जी द्वारा महात्मा मंदिर कन्वेंशन एवं एग्जिबिशन सेंटर, गांधीनगर, गुजरात में प्रदान किया गया। इस कार्यक्रम में केंद्रीय कानून एवं न्याय मंत्री श्री अर्जुन राम मेघवाल भी उपस्थित रहे।

'ब्रांड इंडिया : स्टोरी ऑफ भारत इन ए चेंजिंग वर्ल्ड' पुस्तक का लोकार्पण

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की तरुण भारती पुस्तकमाला के अंतर्गत प्रकाशित प्रो. हिमांशु राय और सुश्री वर्षा जैन द्वारा लिखित पुस्तक 'ब्रांड इंडिया : स्टोरी ऑफ भारत इन ए चेंजिंग वर्ल्ड' का लोकार्पण कार्यक्रम 22 सितंबर, 2025 को डॉ. अंबेडकर इंटरनेशनल सेंटर, नई दिल्ली में आयोजित किया गया। यह पुस्तक भारत के वैश्विक उत्थान, उपलब्धियों और वैज्ञानिक नवाचारों पर प्रकाश डालती है।

पुस्तक लोकार्पण के अवसर पर, माननीय राज्यसभा सांसद, सुश्री रेखा शर्मा ने कहा कि दुनिया अब भारत को एक प्रमुख सैन्य शक्ति के रूप में देख रही है और 'ब्रह्मोस' जैसे भारत के स्वदेशी नवाचारों में गहरी रुचि रखती है। उन्होंने आगे कहा कि भारत एक ब्रांड के रूप में विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति के साथ विश्व स्तर पर चमक रहा है।

पुस्तक के सह-लेखक, आईआईएम इंदौर के निदेशक एवं प्रोफेसर श्री हिमांशु राय और मुद्रा संचार संस्थान, अहमदाबाद (एमआईसीए) की श्रीमती वर्षा जैन; एनबीटी के निदेशक श्री युवराज मलिक और एनबीटी के मुख्य संपादक और संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने भी सभा को संबोधित किया। इस कार्यक्रम का संचालन अभिनेता और स्वर कलाकार श्री विजय विक्रम सिंह ने की। इस कार्यक्रम में बड़ी संख्या में शिक्षाविदों, छात्रों और सामान्य पाठकों ने भाग लिया।

इस कार्यक्रम के सभी वक्ताओं ने अपने वक्तव्य में इस बात का उल्लेख किया कि सरल शब्दों और सुबोध शैली में लिखी गई यह पुस्तक हमें भारत की महत्वपूर्ण उपलब्धियों से साक्षात्कार कराती है। पुस्तक इस बात पर जोर देती है कि भारत अब सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में पहचाना जाता है। आईटी, फार्मास्यूटिकल्स, बायोटेक आदि क्षेत्रों में तीव्र विकास ने भारत को चिंतन और सृजन में एक प्रतिभा केंद्र के रूप में स्थापित किया है, इसलिए शक्तिशाली देश हमारे सर्वश्रेष्ठ और प्रतिभाशाली लोगों को यहाँ नियुक्त करना पसंद करती हैं।

भारत ने जिन क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है, उनमें डिजिटलीकरण, पर्यटन, अर्थव्यवस्था, स्वच्छता, घातक बीमारियों के खिलाफ टीकों का निर्माण और उनके उपयोग आदि शामिल हैं, जो विभिन्न विश्वसनीय स्रोतों से प्राप्त प्रामाणिक आँकड़ों पर आधारित हैं।

एससीओ युवा लेखक सम्मेलन के दूसरे संस्करण का आयोजन

शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) युवा लेखक सम्मेलन का दूसरा संस्करण 25-26 सितंबर, 2025 तक नई दिल्ली में आयोजित किया गया। शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम का उद्‌देश्य, कार्यान्वयन एजेंसी के रूप में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के साथ, एससीओ सदस्य देशों के 40 वर्ष से कम आयु के युवा विद्वानों और लेखकों को सार्थक संवाद के आदान-प्रदान के लिए एक साथ लाना है। इस सम्मेलन में भारत, कज़ाकिस्तान, चीन, किर्गिस्तान, पाकिस्तान, रूस, ताजिकिस्तान, उज्बेकिस्तान, बेलारूस और ईरान सहित विभिन्न देशों के 40 वर्ष से कम आयु के 24 लेखकों ने भाग लिया।

इस दो दिवसीय एससीओ युवा लेखक सम्मेलन के दूसरे संस्करण का उद्‌घाटन माननीय विदेश राज्य मंत्री श्री कीर्ति वर्धन सिंह ने 25 सितंबर, 2025 को द अशोक होटल, नई दिल्ली में किया। सम्मेलन का विषय था—'डायनेमिक्स ऑफ क्रिएटिव स्पेसेज इन दि डिजिटल एज : अ डायलॉग अमंग एससीओ यंग ऑथर्स'।

दूसरा सत्र 'फिल्म कथाओं के विकास' पर केंद्रित था। सत्र की अध्यक्षता प्रो. सोनू सैनी ने की और संचालन प्रो. रंजना बनर्जी ने किया। पैनलिस्ट सौम्या गुरुचरण (भारत) ने शौकिया कलाकारों द्वारा डिजिटल उपकरणों पर अत्यधिक निर्भरता के प्रति आगाह किया, जबकि अविनाश कुमार (भारत) ने इस बात पर जोर दिया कि कैसे ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म ने पहुँच को लोकतांत्रिक बनाया है। प्रतिभागियों ने संगीत-निर्माण में एआई की बढ़ती भूमिका पर भी चर्चा की और इसकी क्षमता और सीमाओं, दोनों पर ध्यान दिया।

सम्मेलन के पहले दिन का अंतिम सत्र सिनेमा पर था। आकृति कोहली (भारत) ने भारतीय सिनेमा की वैश्विक पहुँच पर प्रकाश डाला, फ़रीदोद्दीन फ़रीदासर (ईरान) ने ईरानी सिनेमा के इतिहास का वर्णन किया, और स्वरूप सरदेशमुख (भारत) ने फिल्म समारोहों के महत्व और डिजिटलीकरण के उदय पर चर्चा की। वक्ताओं ने फिल्म निर्माण में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई), छोटे पर्दे पर

अपने मुख्य भाषण में, श्री कीर्ति वर्धन सिंह ने एससीओ के राजनीतिक और आर्थिक महत्व पर जोर दिया। उन्होंने कहा, "यह देशों और मंत्रालयों के बीच सहयोगात्मक भावना का प्रतीक है। वर्तमान अमृत काल, संस्कृति और डिजिटल लोकतंत्रीकरण के सम्मिलन के माध्यम से रचनात्मक परिदृश्य की खोज का एक उपयुक्त समय है।"

आधुनिक दुनिया में डिजिटलीकरण के पक्ष और विपक्ष पर बोलते हुए, एनबीटी के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने कहा, "किसी इनसान की रचनात्मक अभिव्यक्ति मुख्यतः तीन पहलुओं पर निर्भर करती है—भावना, अनुभव और कल्पना। तकनीक का इस्तेमाल इन तीनों पहलुओं की संभावनाओं को बढ़ाने और विस्तार देने के लिए किया जा सकता है, लेकिन इसका मानवीय प्रतिभा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।"

भारत के एससीओ राष्ट्रीय समन्वयक और विदेश मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव श्री आलोक ए. डिमरी, शिक्षा मंत्रालय में उच्च शिक्षा निदेशक श्री वरुण भारद्वाज और एससीओ सचिवालय की सलाहकार सुश्री राखानोवा मीनारा ने भी सभा को संबोधित किया और क्षेत्रीय संबंधों को मजबूत करने में साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के महत्व पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर एनबीटी के निदेशक श्री युवराज मलिक भी उपस्थित थे।

सम्मेलन के उद्‌घाटन के बाद तीन साहित्यिक सत्र हुए। प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे की अध्यक्षता में, पहला साहित्यिक सत्र 'साहित्यिक संस्कृतियों का डिजिटलीकरण और लेखकत्व का पुनर्गठन' पर केंद्रित था। वक्ताओं ने इस बात पर विचार-विमर्श किया कि कैसे डिजिटल तकनीकें लेखकत्व, पाठकत्व और रचनात्मक जुड़ाव को नया रूप दे रही हैं। झान झिकै (चीन) ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए डिजिटलीकरण की क्षमता पर प्रकाश डाला, जबकि अन्ना बबीना (रूस) ने इस बात पर जोर दिया कि एक उपकरण के रूप में एआई मानवीय रचनात्मकता का स्थान नहीं ले सकता। पेंगुइन रैंडम हाउस, भारत की सलोनी मित्तल ने गुणवत्ता सुनिश्चित करने में पारंपरिक प्रकाशन के निरंतर महत्व पर ध्यान केंद्रित किया। सत्र का संचालन एनबीटी के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने किया।

देखने के अनुभव और एल्गोरिथम-संचालित विषय-वस्तु पर चर्चा की। अपने समापन भाषण में, प्रो. मराठे ने इस बात पर जोर दिया कि सिनेमा की तुलना सिर्फ बॉलीवुड से नहीं की जानी चाहिए, और उन्होंने रोजमर्रा के संघर्षों को दर्शाने और सामाजिक जागरूकता पैदा करने में समानांतर सिनेमा के स्थायी महत्व पर भी ध्यान दिलाया। सत्र का संचालन प्रो. मंजू हारा ने किया।

सम्मेलन के दूसरे दिन का शुभारंभ कला एवं संस्कृति पर एक सत्र से हुआ, जिसमें डिजिटल युग में कलात्मक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व पर चर्चा की गई। एलेना रामिज़ोवा की अध्यक्षता और सुबीर डे के संचालन में, चर्चा डिजिटल युग में कलात्मक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व पर केंद्रित रही। इस सत्र में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और 'ज्ञान भारतम् मिशन' के तहत भारत की उपलब्धियों पर भी प्रकाश डाला गया, जहाँ 44 लाख से अधिक पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण किया जा चुका है।

पाँचवें सत्र में पॉडकास्टिंग के युग में मौखिक परंपराओं के पुनरुत्थान पर विचार-विमर्श किया गया। एनबीटी के निदेशक श्री युवराज मलिक की अध्यक्षता और प्रो. रंजना सक्सेना के संचालन में आयोजित इस सत्र में शू हान (चीन) ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान के रूप में डिजिटल साहित्य पर, सायक पाल (भारत) ने पॉडकास्ट के उदय पर, और अन्ना बबीना (रूस) ने रूस में रेडियो के पतन और पॉडकास्टिंग के विकास पर अपनी बात रखी। विमर्शकर्ताओं ने प्रामाणिकता और रचनात्मकता पर चिंता व्यक्त की, जबकि श्री युवराज मलिक ने मौखिक संस्कृतियों के पुनरुत्थान को भारत की श्रुति और स्मृति परंपराओं से जोड़ते हुए सत्र का समापन किया।

अंतिम सत्र में प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे की अध्यक्षता और प्रो. रश्मि दोरईस्वामी के संचालन में, डिजिटल युग में टेलीविजन की बदलती पहचान पर चर्चा की गई। शुहरत ओरिफ ने उज्बेकिस्तान के टीवी से ओटीटी की ओर कदम और एआई-संचालित नवाचारों पर चर्चा की; नईम शौकत (भारत) ने दर्शकों के विखंडन और विशिष्ट सामग्री के उदय पर प्रकाश डाला; और आर्टेम रागिमोव (रूस) ने डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म के साथ-साथ एक सांस्कृतिक माध्यम के रूप में टीवी के पुनर्निर्माण पर विचार व्यक्त किए।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के भारतीय ज्ञान परंपरा पर कुछ उत्कृष्ट प्रकाशन

भारत वैभव

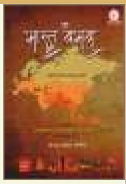

ओम प्रकाश पाण्डेय

इस पुस्तक में वेद तथा ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् सहित वेदांग एवं उपवेद में वर्णित आर्ष ज्ञान परंपरा, पुराणों की महत्ता, दर्शन व उसके विविध स्वरूप, भारत राष्ट्र की सनातनता के वास्तविक स्वरूप, राजनीति व दंड विधान की मौलिकता के साथ परिशिष्ट में भारतीय ऋषि परंपरा के अतिरिक्त, वैश्विक विद्वानों द्वारा भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रशस्ति में व्यक्त किए गए उद्गारों को समावेशित किया गया है

पृ. 442; रु. 1195.00

भारतीय प्रज्ञा

परंपरा का पुण्य प्रवाह

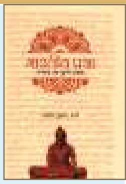

संजीव कुमार शर्मा

प्रस्तुत पुस्तक में विश्व को चमत्कृत करती भारतीय प्रज्ञा के आदिस्वरूप में वेद, पुराण, आर्ष महाकाव्य व पौराणिक ग्रंथों से जनहित के संबंधों को स्थापित किया गया है। भारतीय प्रज्ञा की प्रकृति किस तरह बहुआयामी है, उसके ज्ञान, आध्यात्मिक विद्या, लौकिक विद्या, ललित कलाओं, विज्ञान व शास्त्र और साहित्यिक गतिविधियों की उपयोगिता के संबंध में पुस्तक में बताया गया है।

पृ. 161; रु. 225.00

जीवन, जिज्ञासा और शास्त्र

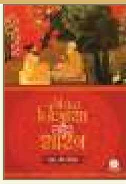

एस.सी. मिश्रा

प्रस्तुत पुस्तक प्राचीन भारतीय ग्रंथों, विशेषकर वेद एवं उपनिषद्, के आधार पर भारत के प्राचीन गौरव और गरिमा की स्थापना का एक महत् उपक्रम है; साथ ही, जीवन की अनेकशः जिज्ञासाओं का समाधान खोजने का प्रयास भी यहाँ दृष्टिगोचर होता है।

पृ. 214; रु. 165.00

वेद कल्पतरू

वेदवाङ्मय पर अभिनव दृष्टि

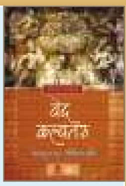

प्रतिष्ठान ग्रंथमाला

वैदिक वाङ्मय का अपना अप्रतिम गौरव रहा है, जिसमें भारतीय सांस्कृति आज भी अनुप्राणित है। इसी संस्कृति तथा गौरव से समाज को अवगत कराने की दृष्टि से वेदों में निहित विभिन्न तत्वों को यहाँ समेकित करने का प्रयास किया गया है।

पृ. 292; (अजि.) रु.340.00; (सजि.) रु. 730.00

वर्तमान संदर्भ में वैदिक मूल्य

नाहिद आबिदी

यदि हम वेदाध्ययन कर उसे अपने जीवन में उतार लें, तो वर्तमान समय की समस्त समस्याओं का निदान संभव है। वेद-ज्ञान की पृष्ठभूमि में, इस पुस्तक में वैदिक मूल्यों-संदर्भों की अर्थवत्ता और प्रासंगिकता को समझने का प्रयत्न दिखता है।

पृ. 286; रु. 330.00

सनातन प्रज्ञा प्रवाह

वेदों से विवेकानंद तक

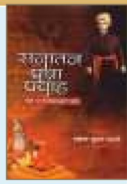

प्रकाश सुमन ध्यानी

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व में सर्वाधिक प्राचीन मानी जाती है। पाँच हजार वर्ष से भी पूर्व, वैदिक काल से भारतीय ज्ञान और मनीषा की जो अविच्छिन्न धारा चली आ रही है, वह 19वीं सदी में भारतीय मनीषा के प्रज्ञान पुरुष, स्वामी विवेकानंद तक चली आई है। इसी सनातन प्रज्ञा के प्रवाह क्रम पर दृष्टिपात करती है यह पुस्तक। प्रत्येक संस्कृतिचेता पाठक के लिए अवश्य पठनीय।

पृ.372; रु. 440.00

भारतीय संस्कृति के प्रतिमान

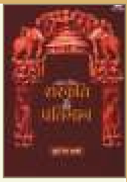

पूर्ण चंद शर्मा

वैश्विक संदर्भ में भारत की संस्कृति का वैराट्य और वैविध्य उच्चतम सोपान पर दृष्टिगोचर होता है। भारतीय संस्कृति एक आदर्श और मानक के रूप में लोगों के हृदय में विराजमान है। भारतीय संस्कृति के विविध रूपों, पक्षों और आयामों पर यह पुस्तक विमर्श करती है। इस विमर्श के क्रम में भारतीय लोककलाओं, लोककथाओं, लोकनृत्यों, लोकगीतों, लोकनाट्यों, लोकसाहित्यों एवं बुझावतों आदि पर पुस्तक में पर्याप्त चर्चा की गई है।

पृ. 411; रु. 510.00

भारतीय सांस्कृतिक विरासत

एक परिदृश्य

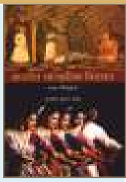

सुदर्शन कुमार कपूर

भारत की सांस्कृतिक विरासत को समझने के लिए यह एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। यह सरल व रोचक भाषा में बेहद अनुसंधान के बाद तैयार की गई पठनीय पुस्तक है।

पृ. 108; रु. 145.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070

फोन : 011-26707761

ई-मेल : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in